# विषय-सूची

# दो शब्द

विज्ञान सम्बन्धी आविष्कारों ने आधुनिक जगत् में एक प्रकार से क्रान्ति उत्पन्न कर दी है, विज्ञान के बल-बूते पर उद्योगशील पुरुषों ने आज अनेक असम्भव बातें सम्भव करके दिखादीं। रेल और मोटरों के आविष्कार से पहले कोई कल्पना भी न कर सकता था, कि एक दिन मनुष्य बम्बई से कलकत्ते तक सैकड़ों मील लम्बी यात्रा केवल चार दिन में समाप्त कर लेगा। अभी कुछ ही वर्ष कौन जानता था, कि पक्षियों की भाँति मनुष्य भी आकाश में उड़कर सात समुद्र पार जा सकेगा। बम्बई और पेशावर में बैठे हुए दो व्यक्ति परस्पर इस प्रकार बातें कर सकेंगे, मानों वे एक ही कमरे मे बैठे हों—यह बात टेलीफ़ोन के आविष्कार से पूर्व किसी के ध्यान मे भी न आ सकती थी। फ़ोनोग्राफ़ द्वारा अनेक प्रकार के गाने सुनकर क्या हमें कौतूहल नहीं होता? सिनेमा के पर्दों पर उछलती-कूदती, दौड़ती हाथ हिलाती और मुँह मटकाती हुई तसवीरों को देखकर ही हम आश्चर्य सागर में डूब जाते थे, परन्तु अब तो वे तसवीरें बातें करने, गाने रोने और हँसने भी लगी है। यदि बायस्कोप में कोई घोड़ा दौड़ता है, तो उसके पैरों की पड़ा-पड़ पड़ापड़ आवाज़ वैसी ही सुन पड़ती है, जैसी किसी पक्की सड़क पर सचमुच का घोड़ा दौड़ रहा हो। इसी प्रकार मोटर की पों-पों और कुत्ते की भों-भों सब ज्यों की त्यों सुनाई देती है। क्या विज्ञान की यह करामातें कम आश्चर्य-जनक है?

सचमुच विज्ञान ने मानव-जीवन की अनेक कठिनाइयों को बहुत ही सरल बना दिया है। इन आविष्कारों ने भिन्न-भिन्न देशों की दूरी तो बिलकुल ही मिटादी है, साथ ही इनके कारण व्यय और समय की भी बहुत बचत हुई है। जिस काम को सैकड़ों मनुष्य मिलकर महीनों में ही नहीं कर पाते, वही मशीन की मदद से घंटों में समाप्त किया जा सकता है। फिर बहुत से काम तो इन मशीनों द्वारा ऐसे होते हैं, जिन्हें मनुष्य कर ही नहीं सकते थे।

किसी समय भले ही इन मशीनों के बिना मनुष्य समाज का काम चल जाता था, परन्तु अब तो हम देखते हैं, ये सब चीजें मानव-जीवन के लिए अनिवार्य हो गई हैं।

जिन वैज्ञानिक महानुभावों ने वर्षों माथा पचाकर और दिन-रात चोटी से एड़ी तक पसीना बहाकर ऐसी-ऐसी अद्भुत और आवश्यक चीजें ईजाद की हैं, हमें उनका चिर कृतज्ञ रहना चाहिए। इन अनवरत अध्यवसायी कर्मवीरों के उपकारों से मनुष्य समाज कभी उऋण नहीं हो सकता।

इस पुस्तक में हमने कुछ आधुनिक आविष्कारों का परिचय देने का प्रयत्न किया है। आशा है, पाठकों—विशेष कर छोटे-छोटे विद्यार्थियों—को वह रुचिकर होगा। इस पुस्तक मे हमारा क्या है, सब इधर-उधर से लेकर ही लिखा गया है। अतएव इस के लिए हम उन विद्वान लेखकों के अत्यन्त आभारी हैं, जिनकी कृति से इस पुस्तक-रचना में हमें सहायता मिली है।

गुरु पूर्णिमा
१९९१

हरिशङ्कर शर्मा

जेम्स वाट और उसकी माता
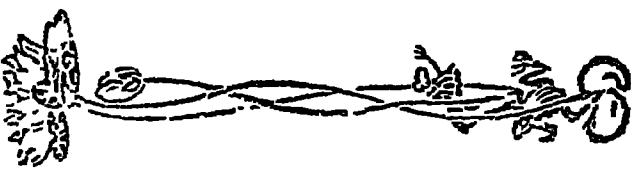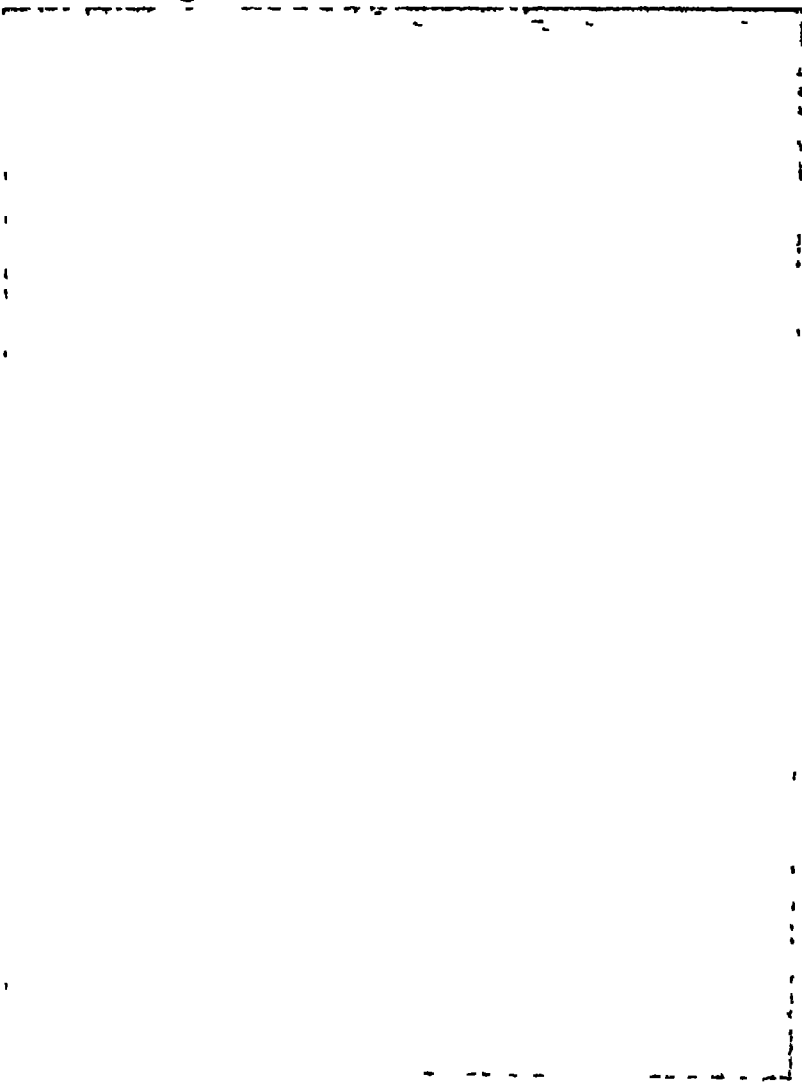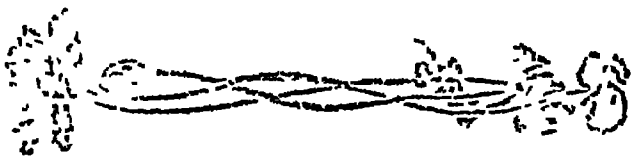
# विचित्र विज्ञान

## रेलगाड़ी

रेलगाड़ी से संसार को बहुत बड़ा लाभ पहुँचा है। ऐसा कौन-सा देश या प्रदेश है, जहाँ धड़धड़ करती रेलगाड़ी न दौड़ रही हो। जिन स्थानों में जाना खतरनाक और कठिन था, रेलगाड़ी द्वारा वहाँ अब आसानी से पहुँचा जा सकता है। महीनों की मंज़िलों को घंटों मे तय करा देना रेलगाड़ी ही का काम है। भारतवर्ष मे ही देखिए, यहाँ पहले जब कोई तीर्थ-यात्रा को जाता था तो लोग यह समझ लेते थे कि, यदि वह तीर्थ-यात्रा
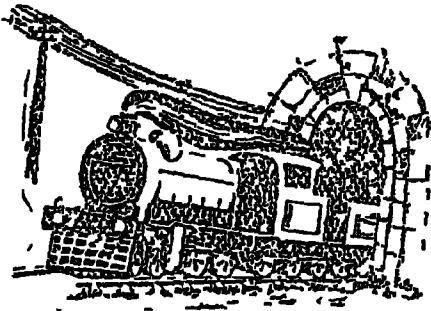
रेलगाडी

से सकुशल वापिस आ गया तब तो बड़े सौभाग्य की बात है, नहीं तो उसका जीवन सङ्कट में तो पड़ ही चुका है। अब तक कहावत मशहूर है—'गया गया सो गया।' अर्थात् पहले गया

की यात्रा इतने उलझन की थी कि उसे करके विरले ही वीर घर वापस आते थे। परन्तु अब क्या है, आज रेलगाड़ी द्वारा गया जाइये और कल वापस आजाइये। यही नहीं, रेलगाड़ी द्वारा संसार को व्यापारिक और राजनैतिक लाभ भी बहुत हुए है। दूरस्थ देश एक दूसरे के पड़ौसी बन गये हैं, और उनमें परस्पर सम्बन्ध स्थापित हो गया है। यात्रा की ऐसी अच्छी सुविधा कदाचित ही कभी हुई हो।

जिस रेलगाड़ी का इतना महत्व है, उसके आविष्कार की कथा भी बड़ी मजेदार है। आज रेल के इंजन की शक्ति को देख कर सब को बड़ा आश्चर्य होता है, परन्तु यह बात बहुत कम लोगों को मालूम है कि आखिर इस इंजिन का आविष्कार कैसे हुआ? जैसा इंजन आज हम देखते है, क्या शुरू में वह ऐसा ही बन गया था अथवा उसमे और सुधार हुए। पहले-पहल इंजन का विचार मस्तिष्क मे कैसे आया, सबसे प्रथम किसने इसका प्रयोग किया, ये ऐसी बातें हैं जिनको जानने के लिए सबको उत्सुकता हो सकती है।

इंजन का इतिहास नया नहीं है, सबसे प्रथम मिश्र देश के हीरो नामक शिल्पी ने लगभग दो सहस्र वर्ष पूर्व, भाप का एक इंजन बनाया था परन्तु वह बालकों के खेल से बढ़ कर सिद्ध न हुआ। इसके बाद हॉलेंड के ह्यूजिन ने बारूद का एक इंजन बनाया, यह इंजन पिचकारी की तरह था, जो बारूद में जोरका धड़ाका होने से चलता था। इसके बाद फ्रान्स के

डेविस पेपिन नामक एक डाक्टर ने ऐसा इंजन बनाया, जिसके लिए पानी गरम कर के भाप बनाई जाती थी, जब इस इंजन मे भाप बन जाती थी तो उसके नीचे की आग बुझादी जाती थी, ठंडक पाते ही भाप फिर पानी के रूप में बदल जाती थी। जब पानी की भाप बन जाती है तो वह पहले की अपेक्षा अधिक स्थान घेरती है। ऊपर की खोज तो अच्छी थी, परन्तु आग बुझा कर जलाने तथा सिलेण्डर को गर्म कर पुनः भाप द्वारा वैकुअम ( वायुशून्य प्रदेश पैदा ) करने मे बड़ा समय लगता था। थोड़े दिनों बाद न्यूकमेन नामक मिस्तरी ने इसमें यह सुधार किया कि भाप दूसरे वर्तन में बनाई जाय और सिलेण्डर की भाप ठंडी होते हो उसमें वह फिर भरदी जाय। बायलर का निर्माण इसी सिद्धान्त पर हुआ। फिर सत्तर वर्ष तक इंजन की यही प्रथा प्रचलित रही, किसी ने उसमें सुधार न किया। सन् १७६३ ई० में जेम्स वाट नामक व्यक्ति ने अपने बुद्धि कौशल द्वारा पुराने इंजन के कितने ही दोष दूर कर उसे उन्नत रूप दिया, इस प्रकार इंजन की गति पहले की अपेक्षा दस गुनी हो गई।

सब से प्रथम १७७४ ई० में वाट ने अपना इंजन वरमिंघम में प्रदर्शन के लिये भेजा। इस इंजन के आविष्कार से पहले सब इंजन रद्दी हो गये, और कोयले की खानों पर वाट् ही का इंजन काम करने लगा। जेम्स वाट् अपनी धुन में बराबर लगा रहा, और उसने इंजन सम्बन्धी और भी कितने ही आवश्यक

तदनुसार ही स्टीफ़िन्सन अपने इञ्जनों में सुधार भी करता गया और उसने उन्हें ख़ूब उपयोगी तथा दोष-रहित बनाने का पूरा प्रयत्न किया।

१८२६ ई० में घोषणा की गई कि चलने-फिरने वाले सर्वोत्तम इञ्जन बनाने वाले को पाँचसौ पौण्ड उपहार स्वरूप भेंट किये जायँगे। कितने ही लोगों ने इसके लिए तैयारी की, परन्तु जान इरिक्सन और जार्ज स्टीफिन्सन सब में मुख्य थे। इन दोनों आविष्कारकों ने भी इस प्रतियोगिता में भाग लेना स्वीकार किया। स्टीफ़िन्सन के इञ्जन का नाम 'राकेट' और इरिक्सन के का 'नाविलटी' था। परीक्षा के दिन हज़ारों दर्शकों के सामने दोनों की दौड़ हुई। परन्तु उस दौड़ में नाविलटी' नष्ट-भ्रष्ट हो गया और राकेट विजयी हुआ। नाविलटी के हार जाने से इरिक्सन पर कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह इस क्षेत्र को छोड़ कर स्टीमर जहाज़ बनाने मे लग गया।

चलने फिरने वाले इंजनों की उपयोगिता उत्तरोत्तर बढ़ने से उनके विचार में भी उन्नति हुई। जब सड़कों पर गाड़ियाँ लेकर इञ्जन दौड़ने लगे तो कुछ लोगो ने उनका बड़ा विरोध किया और कहा कि यह कार्य तुरन्त बन्द कर दिया जाय। साधारण जनता ही ने नहीं, प्रत्युत पार्लीयामेन्ट तक के कुछ मेम्बरो ने रेलगाड़ी के विरुद्ध आवाज़ उठाकर इस प्रणाली को अत्यन्त आपत्तिजनक बताया। किसी ने कहा यदि इञ्जन की चपेट में आकर कोई आदमी या जान-

बर कट गया तो इसका जिम्मेदार कौन होगा ? पार्लियामेन्ट के कुछ शिकारी सदस्यों ने रेलगाड़ी के विरुद्ध एक बड़ी विचित्र युक्ति दी। वे बोले कि इञ्जन की फूँ फाँ और गाड़ियों की घड़घड़ाहट से हमारे शिकार खेलने की जगह आतङ्क छा जायगा और फिर उस ओर किसी पशु-पक्षी की परछाई भी दिखाई न देगी। अच्छी रेलगाड़ी चली, इससे तो हमारा सारा काम ही चौपट हो जायगा ! कितने ही डाक्टर कहने लगे, अरे साहब, जब सूरंगों में होकर गाड़ियाँ चलेंगी तो मुसाफिरों के स्वास्थ्य बिगड़ जाने की पूरी आशङ्का है। ऐसी स्वास्थ्य-विघातक विधि को कभी न अपनाना चाहिये। कुछ महाशयों ने तो भयभीत होकर यहाँ तक कहा कि दुर्भाग्यवश यदि कहीं 'बायलर' का पेट फट गया तो सैकड़ों आदमियों की हत्या हो जायगी। ऐसी खतरनाक चीज का प्रचार कभी न होने देना चाहिये। निदान जितने मुँह उतनी ही बातें ! अधिकतर लोग रेलगाड़ियों के प्रचार के विरुद्ध थे। हाँ, कुछ दूरदर्शी तथा विचारशील व्यक्ति ऐसे भी थे, जो भविष्य का ध्यान कर रेलगाड़ियों के विस्तार को अत्यन्त आवश्यक और उपयोगी समझते थे।

विरोधियों के विरोध की कुछ भी परवाह न की गई। लाइन तैयार हो जाने पर, जिस दिन पहली बार सवारी गाड़ी चली, उस दिन एक बड़ा उत्सव हुआ। हजारों दर्शक तमाशा देखने के लिए एकत्र हुए। उस दिन स्टीफिन्सन ने स्वयं इञ्जनी

ड्राइवर का काम किया। इस मिश्रित ट्रेन में ३४ गाड़ियाँ थीं, जिनमें साढ़े चारसौ सवारियाँ बैठी थीं और कोयला तथा अन्य माल लदा हुआ था। इस ट्रेन ने पहले एक घंटे ५ मिनट में ९ मील पूरे किये, फिर इसकी रफ्तार कुछ और बढ़ी, परन्तु १२ मील फी घंटे से अधिक न हुई। प्रारम्भ में इस ट्रेन में सवारियों के लिए एक से डिब्बे थे, सब लोग इन्ही में सवारी करते थे, परन्तु उस समय बड़े लोग साधारण लोगों के साथ रेल में बैठ कर यात्रा करना अपना अपमान समझते। अतः वे अपने असबाब तथा सेवकों को तो रेल द्वारा भेजते थे और स्वयं घोड़ा-गाड़ियों पर सवार होकर यात्रा करते थे। १८४२ ई० मे महारानी विक्टोरिया ने रेल द्वारा लन्दन से विण्डसर तक यात्रा की, तब तो पुराने ढर्रे के धनी लोगों के विचार बदल गये और वे भी अपना पक्षपात छोड़ कर रेल में सफ़र करने लगे। स्टीफिन्सन जब तक जीवित रहा, बराबर इंजन, रेलवे और गाड़ियों में सुधार करता रहा। अपने समय मे वह बहुत बड़ा धनी हो गया था, उसकी कितनी ही कोयले की खान थीं। एक वह समय था, जब स्टीफिन्सन पशु चराया करता था! सचमुच प्रतिभा-शक्ति मे बड़ा चमत्कार है वह आदमी को धरती से उठाकर आसमान पर बिठा देती है।

ज्यों-ज्यों समय बीतता गया त्यों-त्यों रेलगाड़ियों मे काफ़ी उन्नति होती गई। उनमे खान-पान, रहन-सहन तथा रोशनी की पूरी व्यवस्था की गई। कहीं चले जाइये, रेल की यात्रा में

आपको कुछ भी कष्ट न होगा। रेल की रफ़तार में तो यहाँ तक उन्नति हुई है कि साधारण एक्सप्रेस एक घंटे में साठ मील की यात्रा बड़ी आसानी से कर लेती है। अब तो बिजली द्वारा भी रेलें चलने लगी हैं। अर्थात् भाप के इंजन की जगह बिजली ही काम करती है परन्तु ऐसी गाड़ियों का प्रचार अभी बहुत कम है। बम्बई आदि नगरों के इधर-उधर ही वह चलती-फिरती रहती हैं। ट्रेनों से सवारियाँ ले जाने और माल ढोने ही का काम नहीं लिया जाता, उसके द्वारा डाक भी भेजी जाती है। अगर रेल की इतनी उन्नति न हुई होती तो इतनी शीघ्रता से डाक का आना-जाना कैसे हो सकता था। अब तो ऐसी भी रेल आविष्कृत हुई हैं जो बिना किसी ड्राइवर के चलती है, यह रेल प्रायः डाक ढोने के काम आती हैं। लन्दन मे सुरङ्ग बना कर जमीन के नीचे ही नीचे मीलों रेल लेजाई गई हैं। वहाँ ये डाक-गाड़ियाँ अपने आप चलती हैं, इनकी चाल ३५ मील फ़ी घंटे होती है, ३०,००० डाक के थैले रोज लाती-लेजाती हैं। ये ट्रेनें थोड़ी-थोड़ी देर बाद छूटती रहती हैं। स्टेशनों पर डाक उतारने और लादने के लिए मशीन लगी हुई हैं। केबिन मे बैठा हुआ आदमी जिस प्रकार सिगनल उठाने और गिराने का काम करता है, उसी प्रकार वह इन बिना ड्राइवर की डाक गाड़ियों को ठहराता, चलाता और उनकी गति को तीव्र तथा मन्द करता रहता है।

इञ्जन के आविष्कारक जार्ज स्टीफ़िन्सन के परिचय के संबन्ध में यहाँ कुछ पंक्तियाँ लिख देना अनुचित न होगा।

स्टीफिन्सन एक निर्धन परिवार में उत्पन्न हुआ था, उसकी पढ़ाई-लिखाई का कुछ भी प्रबन्ध न हो सका, वह एक कोयले की खान में नौकर हो गया। वहाँ भाप से चलने वाला एक इंजन लगा हुआ था, इस इंजन को स्टीफिन्सन बड़े ध्यान से देखा करता था। यह इंजन आटे की चक्की के इंजन की तरह एक जगह लगा रहता था, चल-फिर न सकता था। चलने-फिरने वाला इंजन बनाने की ओर किसी का ध्यान ही न गया था ध्यान भी गया था तो कोई उसमे सफल न हो सका था। स्टीफिन्सन पर इस प्रकार के इंजन बनाने की धुन बुरी तरह सवार थी, अन्त में उसने घोर परिश्रम के बाद ऐसा एक इंजन बना ही डाला। उसका पहला इंजन बहुत भद्दा और बेडौल बना। इसके बाद स्टीफिन्सन ने 'आइरन होर्स' (Iron Horse) ामक इंजन तैयार किया, जो पहले की अपेक्षा सुधरा हुआ था। इसे देखने के लिए दूर-दूर के दर्शकों का ताँता लग गया। स्टीफिन्सन जब तक जीवित रहा, बराबर वह उधेड़-बुन में लगा रहा, और यह सोचता रहा कि वह अधिक से अधिक उत्तम और उपयोगी किस प्रकार बनाया जा सकता है। स्टीफिन्सन का पुत्र राबर्ट भी अपने पिता को इंजन के कार्य में बड़ी सहायता देता था। स्टीफिन्सन निर्धन परिवार में पैदा होकर संसार में अपना नाम अमर कर गया। लन्दन के ईस्टर्न स्टेशन पर इस महापुरुष की सुन्दर प्रतिमा बनी हुई है, और उसके 'राकेट' नामक प्रथम इञ्जन का नमूना भी रक्खा है।

## तार

तार भी विज्ञान की एक विभूति है, उससे लोगों को अनेक लाभ पहुँचते हैं। जिसने तार का आविष्कार किया, सचमुच उसने संसार की बड़ी सेवा की है। तारा द्वारा हम आगरे में बैठकर, मदरास बम्बई, कलकत्ता लाहौर आदि से घंटों में खबर मँगा सकते हैं। इंगलैंड, अमरीका आदि देशों के समाचार भी अनायास ही प्राप्त कर सकते हैं। संसार में कहीं कोई घटना घटती है, तो तार की कृपा से वह तुरन्त समाचार पत्रों में पढ़ने को मिल जाती है। लन्दन पार्लीमेंट में जो व्याख्यान दिये जाते हैं, वे यदि डाक द्वारा भेजे जायँ, तो भारत मे १६, १७ दिनों से पूर्व नहीं पहुँच सकते, परन्तु तार की बदौलत वह दूसरे दिन ही ज्यों के त्यों अखबार में छप जाते हैं।

तार इतना आवश्यक है कि छोटे-से-छोटे कस्बे मे भी सरकार को उसके दफ्तर खोलने पड़े हैं। नियत फ़ीस देकर कोई भी आदमी चाहे जहाँ तार भेज सकता है। तार की मशीन बिजली से चलती है। लट्ठों पर जो तार फैला रहता है, उसी के आधार पर तार के संकेत होते रहते हैं। पहिले बिजली द्वारा चुम्बक की सुई हिलने से संकेत होते थे, और उन्हीं संकेतों द्वारा अक्षर और शब्द बना लिए जाते थे, परन्तु पीछे गट गट की आवाज के संकेत बनाये गये जो आज तक

प्रचलित हैं। तार की इस विधि को मोर्सटिक प्रणाली कहते हैं। यों तो तार के सम्बन्ध में १८१६ ई० से खोज हो रही थी, परन्तु वर्त्तमान प्रणाली का श्रेय अमरीका निवासी मिस्टर मोर्स को है, जिन्होंने १७३७ ई० में इसे प्रचलित किया।

तारघर में एक यन्त्र लगा रहता है, जिसका सम्बन्ध बिजली के तारों द्वारा अन्य तारघरों से होता है। तारघर में तारबाबू डैमी को दबाकर गर-गट के संकेत करता है, ठीक वैसा ही संकेत उस समय दूसरे तारघरों में भी होता है। परन्तु जिस तारघर से इन संकेतो का सम्बन्ध होता है, वही उसे सुनता है, दूसरे ध्यान नहीं देते। मान लीजिये तारबाबू को 'राम' 'Ram' कहना है तो वह 'आर' 'ए' 'एम' तीन अक्षरों का संकेत करेगा—अर्थात् गर गट-गट ( आर ), गर-गट ( ए ) और गट-गट ( एम )। तार के लिये अँग्रेजी की सारी वर्णमाला इसी प्रकार के संकेतों से बनाई गई है, और सारे समाचार इन्हीं संकेतो से दिये जाते हैं। तारघरों मे काम करने वाले बाबू लोगों को तार देने-लेने की विशेष प्रकार से शिक्षा दी जाती है, जब वे उसमें भली भाँति अभ्यस्त हो जाते हैं, तब तारघर के इन्चार्ज बनाये जाते हैं। पहले तार भेजने के लिए पाँच तारो का उपयोग होता था, फिर दो का होने लगा और अब केवल एकही तार से काम लिया जाता है।

स्थल में तो लट्ठों पर तार फैला दिये गये और उनके द्वारा तार भेजने की व्यवस्था हो गई, परन्तु समुद्र पार देशों के लिये

बड़ी कठिन समस्या उपस्थित हुई, क्योंकि मीलों गहरे समुद्र में लट्ठे नहीं गाड़े जा सकते थे। इस कठिनाई को दूर करने के लिये भी बुद्धिमानों ने ख़ूब दिमाग़ लड़ाए परन्तु उन्हें सफलता न हुई। कुछ लोगों ने तार को समुद्र के पैंदे मे डालने का विचार किया, परन्तु नंगे तार के पानी मे पड़े रहने से बिजली पृथ्वी में चली जाती, अतएव यह विचार कार्य रूप में परिणत न हो सका। थोड़े दिनों बाद एक नयी तरकीब सूझी, ताँबे के तीनों मोटे-मोटे तार बट कर एक रस्सा बनाया गया और उसके ऊपर गटा पार्चा तथा रबर का आवरण मढ़ दिया गया, फिर उसके ऊपर लोहे के तार का पत्तर लपेटा गया। यह तार समुद्र में डाल दिया गया और अब पानी के स्पर्श से उस में दौड़ने वाली बिजली के पृथवी तक पहुँचने की आशङ्का न रही। ऐसे तार 'केबुल' या समुद्री तार कहलाते हैं। लाखों रुपये व्यय करके 'केबुल' तैयार तो हो गये परन्तु अब इन हजारों मील लम्बे तारों को समुद्र मे बिछाया किस तरह जाय, यह प्रश्न उपस्थित हुआ। जहाजों पर लाद कर तार एक देश से दूसरे तक फैलाये गये परन्तु कितनी ही बार वे रास्ते ही में टूट गये, समुद्र के अगाध जल मे टूटे हुए तार का पता कैसे लगाया जाय। फिर भी ज्यों-त्यो कर इस योजना को सफल बनाया गया और समुद्र की पैंदी मे केबुल फैलाये गये। अब इन केबुलो द्वारा बराबर तार आते-जाते हैं, और संसार के किसी भाग के समाचार अनायास ही

मालूम हो सकते हैं। जब कभी ये केबुल टूट जाते अथवा ह्वेल आदि जलजन्तु उन्हें अपना खाद्य पदार्थ समझ कर चबा डालते थे तो बड़ी कठिनाई से पता लगाता था कि यह टूट-फूट किस स्थान पर हुई है। सारे केबुल की पड़ताल करने पर जाना जाता था कि वह कहाँ टूटा है। परन्तु अब एक मशीन के आविष्कार ने यह दिक्कत दूर कर दी। इस मशीन की सहायता से यह बात अच्छी तरह मालूम हो जाती है कि समुद्र के तार का रस्सा कहाँ टूटा है जहाँ टूट-फूट होती है, वहीं मरम्मत के जहाज़ पहुँचकर उसकी मरम्मत कर देते हैं। और काम में किसी प्रकार की गड़बड़ी नहीं होने पाती। केबुल द्वारा समाचार भेजने ने लिये भी प्रायः स्थल तार की सी मशीनों और वैसे ही संकेतों से काम लिया जाता है। हाँ, तार-ग्राहक यन्त्र दूसरे प्रकार का होता है। केबुलों द्वारा कोई भी समाचार बात की बात में सारे संसार में फैलाया जा सकता है।

तार के आविष्कारक एफ० बी० मोर्स, चित्र-कला में बड़े निपुण थे, उन्होंने चित्रकारी सीखने में बड़ा श्रम किया था। तार निकालने की बात तो उन्हें अचानक सूझ गई। वे जहाज़ में बैठ कर अपने घर आ रहे थे। यात्रा लम्बी थी, समय बिताने के लिए यात्रियों में परस्पर वार्त्तालाप होता रहता था, एक दिन बातों ही बातों में मोर्स को मालूम हुआ कि तार चाहे जितना लम्बा क्यों न हो, परन्तु उसमें बिजली की धारा एक से

दूसरे सिरे तक अविलम्ब दौड़ सकती है। यह बात और लोगों ने भी सुनी परन्तु मोर्स ने इस बात में से भी एक नई बात निकाली। उसने सोचा कि जब तार में विद्युत्-धारा एक से दूसरे तक एक साथ दौड़ सकती है, तो उससे संकेतों द्वारा समाचार भेजने का काम क्यों न लिया जाय। यह बात मोर्स के दिमाग़ में भर गई और जहाज ही मे उसने टेलीग्राफी की विधि निश्चित कर ली। घर पहुँच कर उसने अपनी चित्रकला तो छोड़दी, परन्तु तार विद्या में वह तन्मयतापूर्वक लग गया।

मोर्स बड़ा निर्धन था, उसके पास आविष्कार सम्बन्धी सामग्री खरीदने के लिए पैसे न थे, फिर लोग इस विचार की हँसी उड़ाते और साथ ही उपेक्षा भी करते थे। परन्तु मोर्स को किसी की कुछ परवा न थी, वह अपनी धुन मे बराबर लगा रहा और कई वर्ष के लगातार परिश्रम के पश्चात् 'टेलीग्राफ का आविष्कार करने में समर्थ हुआ। १८३७ ई० में मोर्स ने अपनी मित्र-मण्डली के सामने इस आविष्कार का प्रदर्शन किया। उस समय सब लोगों को तार द्वारा समाचार आते-जाते देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। एल-फ्रेड वेल नामक सज्जन तो इस आविष्कार को देखकर इतना प्रभावित हुआ कि उसने उसी समय मोर्स को वचन दिया कि भविष्य में तुम्हें इस कार्य के लिए जितने धन की आवश्यकता होगी, मैं दूँगा। उस दिन से वेल मोर्स का सहायक और साझी हो गया। फिर उसके आगे कभी कोई आर्थिक कठिनाई नहीं आई

बेल की सहायता से मोर्स ने अपने यन्त्र में अनेक सुधार किये और उसे सर्वसाधारण के सामने प्रदर्शन करने योग्य बना दिया। जब लोगों ने इस यन्त्र की उपयोगिता देखी तो वे उस पर मुग्ध हो गये। सबसे पहले १८४३ ई० में अमरीका की कांग्रेस ने तार की लाइन खोलने के लिये तीस हज़ार डालर मंजूर किए, फिर तो कितनी ही और लाइन खुलीं और तार का प्रचार उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया।

पहले मोर्स का विचार ज़मीन के नीचे तार बिछाने का था, परन्तु यह कार्य बहुत व्यय साध्य सिद्ध हुआ, अन्त में उसने खम्भे खड़े कर उन्हीं पर तार पूर दिये, और इसी विधि को ठीक समझा। १ अप्रेल १८४५ ई० को अमरीका में यह तार सर्व साधारण के लिए खोल दिया गया। अक्षरों के लिए तो इशारे थे ही, कुछ वाक्यों और शब्दों के लिए भी संकेत शब्द ( कोड वर्ड ) बनाए गये, जिससे ख़बर भेजने में सुविधा भी हुई और समय भी बचा। मोर्स ने अपने इस आविष्कार का अधिकार अमरीका की सरकार के हाथ बेचना चाहा परन्तु उसने उसे यह समझ कर न लिया कि इस में जितना ख़र्च करना पड़ेगा उतनी आमदनी न होगी। अन्त में प्राइवेट कम्पनियों ने इसका आविष्कार खरीद कर यथेष्ट लाभ उठाया। मोर्स के जीवन-काल ही में तार हजारों मील लग चुका था और उसकी उपयोगिता सबने एक स्वर से स्वीकार करली थी।

———

# जलयान

सुदूरस्थ भिन्न-भिन्न नगरों का पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करने में जो सहायता रेलों ने पहुँचाई है दुनिया के हजारों मील चौड़े और हजारों गज गहरे समुद्रों के वार-पार स्थित देशों को मिलाने में वही काम जहाजों ने किया है। यदि जहाजों का आविष्कार न हुआ होता तो, इन अगाध और विशाल समुद्रों को पार करना अत्यन्त कठिन था। जिन समुद्रों में असंख्य भीषण जन्तु मुंह बाए बैठे हों, और पहाड़ की चट्टानों जैसी उत्तुङ्ग तरंगे हड़पने के लिए तैयार हों क्या कभी उनमे कोई बिना जहाजों के घूमने का साहस कर सकता था ? परन्तु विज्ञान की सहायता से आज सहस्रों लाखों आदमी अगाध समुद्रो के विशाल वक्ष-स्थल पर क्रीड़ा करते दिखाई देते हैं। जिस प्रकार स्थल मे रेलों द्वारा बैठते-लेटते, खाते-पीते गाते-बजाते, आँधी, मेह, धूप, आदि से सुरक्षित एक नगर से दूसरे नगर में पहुँच जाते है; उसी भाँति जल में जल-यानों द्वारा एक देश से देश दूसरे को बड़ी सुख पूर्वक यात्रा की जाती है। रेलों की अपेक्षा जहाजों में अधिक सुविधाएँ होती है। जहाजों पर आप चाहें तो टेनिस आदि खेल सकते हैं रात को बायस्कोप देख सकते है रेडियो द्वारा सुदूर नगरमें होने वाले गाने और व्याखान सुन सकते हैं। जो सुभीते आपको अपने घर या नगर मे हैं, वही सब जहाजों पर

भी मिल सकते हैं। जहाजों को यदि समुद्र की सतह पर तैरता हुआ एक छोटा-सा नगर कहें तो अत्युक्ति न होगी।

जहाजों द्वारा यात्रा तो की जाती है, साथ ही सहास्रों टन माल भी एक देश से दूसरे देश में इन्ही के द्वारा पहुँचाया जाता है। कोयला, कपड़ा, लोहा, अन्न पशु-पक्षी आदि अनेक
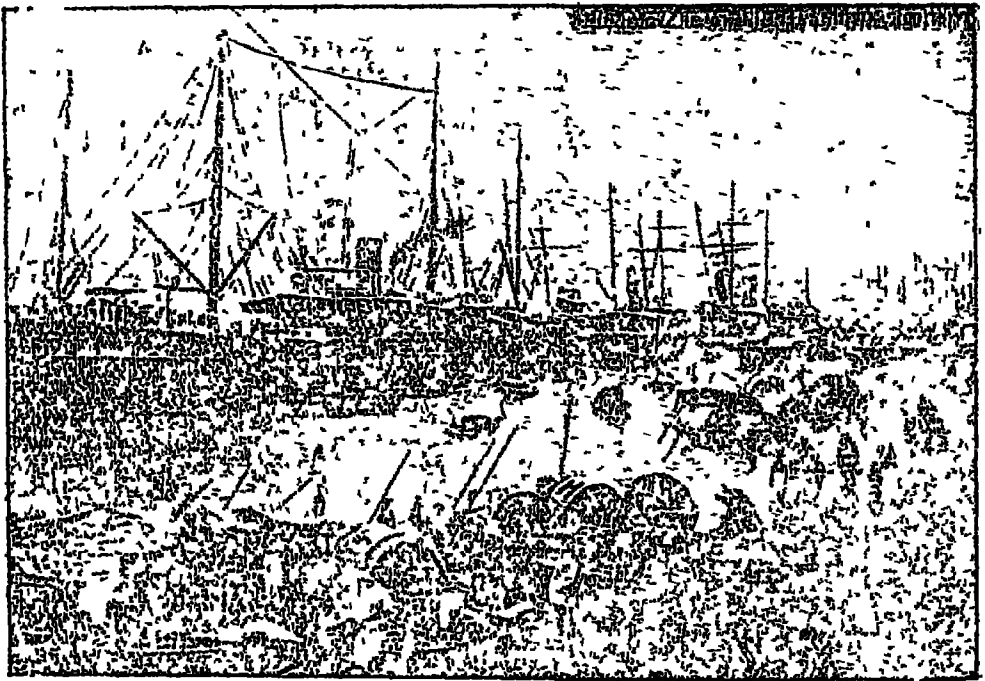
जहाज़

वस्तुएँ विलायत से भारत और भारत से विलायत को ले जाई जाती है। जहाजों से व्यापार को जो सहायता पहुँची वह वर्णन के बाहर है। वास्तव मे यदि जहाज न होते, तो व्यापार की इतनी उन्नति होनी नितान्त असम्भव थी, माल और सवारियाँ ढोने मे तो रेल और जहाज समान रूप से काम देते

हैं, परन्तु जहाज़ों से एक और ऐसा काम लिया जाता है, जो रेलों द्वारा हो ही नहीं सकता। यह काम है जहाजों मे बैठकर युद्ध करना। जो जहाज लड़ाई के काम लाए जाते हैं, उनके ऊपरी भाग में, किलों की तरह चारों ओर बड़ी-बड़ी तोपें रखी रहती हैं। लड़ाई के जहाजों को एक चलता-फिरता छोटा सा किला ही समझना चाहिए। इनमे सहस्रो सैनिक और उनके लिए महीने तक के लिए खाने-पीने की सामग्री और युद्धोपयोगी शस्त्रास्त्र सब उसी भांति रह सकते है, जिस प्रकार किसी क़िले मे रहते हैं। जलयानों द्वारा अनेक बल-शाली राष्ट्रों ने समुद्र पर भी अधिकार जमा लिया है।

जहाज़ों की उपयोगिता के सम्बन्ध मे इतना जान लेने के पश्चात् आप यह भी अवश्य जानना चाहते होंगे कि इतना महत्त्वपूर्ण आविष्कार कब, किसने और कहाँ किया। आज-कल जो लोहे के जहाज़ स्टीम इंजन के बल से चलते देखे जाते हैं इनका निर्माण आज से लगभग सौ वर्ष पहले हुआ। स्टीम इंजनों से और-और काम तो इससे पूर्व ही लिये जाने लगे थे, अब कुछ लोगों को यह धुन भी सवार हुई कि जहाज़ भी स्टीम इँजन द्वारा चलाए जायँ। यह विचार ध्यान मे आते ही उद्योगशील व्यक्ति इसके परीक्षण में लग गये और उनके परिश्रम के फलस्वरूप में आज हम बड़े-बड़े भीमकाय जलयानों को समुद्र की छाती छीलते हुऐ, इस पार से उस पार आते-जाते देखते हैं। सब से पहले वाष्प-शक्ति से जहाज चलाने की

युक्त किसने निकाली, इसका उत्तर अभी विवादास्पद है। ग्रेटब्रिटेन वालों का कहना है कि आजकल के ढङ्ग का सब से पहला जहाज हमारे यहाँ बना, और स्पेन वाले कहते हैं कि यह आविष्कार सर्व प्रथम हमारे देश के ब्लास्कोडिग्रे नामक व्यक्ति ने किया। फ्रांस वाले इन दोनों के विरुद्ध इस आविष्कार का श्रेय फ्रांस निवासी 'डेनिस पेपिन' को देते हैं। बात असल में यह है कि, जहाजों को वाष्प शक्ति से चलाने के उद्योग में अनेक व्यक्ति एक ही साथ उन्नतिशील हुए, परन्तु उनमें सबसे अधिक सफलता 'राबर्ट फुल्टन' को मिली, जो अमरीका का रहने वाला था। फिर तो जहाजों में नित नए सुधार होने लगे। स्वीडन निवासी जान एरिक्सन ने भी भाप से चलने वाले जहाज बनाने में अच्छी सफलता प्राप्त की। फुल्टन के जहाज मे जो कमी रह गई थी, उसे इसने दूर किया। एरिक्सन ने अपने जीवन में जितने जहाज बना कर समुद्र मे छोड़े प्रायः उन सब ही को सफलता प्राप्त हुई। राबर्ट फुल्टन ने तारपीडो का आविष्कार किया जो बात की बात में, शत्रु के समर-पोत को नष्ट कर देता था। स्टीम जहाजों के आविष्कारों के सम्बन्ध में रावर्ट फुल्टन और जान एरिक्सन के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। दोनों का जन्म क्रमशः १७६५ और १८०३ ई० में हुआ। दोनों व्यक्ति बचपन ही के प्रतिभाशाली और परिश्रमी थे। साधनहीन होने के कारण उन्हें बड़ी प्रतिकूल परिस्थिति में काम करना

पड़ा। बेचारे अपनी धुन में देश-विदेश मारे-मारे फिरे। लोगों के व्यंग्यबाण और उपहास के केन्द्र बने, परन्तु अपने उद्देश्य से बाल बराबर भी विचलित न हुए। अन्त में सफल हुए और आज उनकी प्रतिभा का चमत्कार बड़े-बड़े जलपोतो के रूप में सब के सामने है।

स्कॉटलेण्ड निवासी सिमिंगटन नामक मिस्त्री ने एक जहाज बनाया, जिसमें चार हजार मन बोझा लादा जा सकता था। सिमिंगटन ने अपने जहाज में आँधी आदि में न डूबने की सुविधाएँ कर दी थीं। सिमिगटन के पश्चात् उसी के सहकारी हेनरी बेल ने जहाजों में और भी सुधार किए, और अब जहाज नदी के बहाव मे, बहाव के सामने और बहाव को काट कर सब ओर समान गति से चलने लगे। इन भाप के जहाजों द्वारा सर्व प्रथम १८३८ ई० में दो अँगरेजोने समुद्र पार किया था। वे चौदह दिन लगातार चल कर अटलांटिक महासागर पार कर अमेरिका पहुँचे थे।

स्टीम इञ्जनों के आविष्कार से पहले जहाज पाल तान कर वायु के जोर से चलाए जाते थे। उनमें अनेक दिक्कतें रहती थीं। सबसे बड़ी असुविधा उनमें यह थी, कि निर्दिष्ट स्थान पर जाने के लिए उसी ओर चलने वाली वायु की एक-एक दो-दो हफ्ते तक प्रतीक्षा करनी पड़ती थी, इसलिए यात्रा मे बहुत समय लग जाता था। कभी-कभी तो इन जहाजो को अनुकूल वायु की प्रतीक्षा मे महीनों एक ही स्थान पर खड़ा

रहना पड़ता था। पर आजकल के जहाजों में यह कुछ भी दिक्कत नहीं है। ये तो आँधी-मेह दिन-रात किसी बात की परवा किए बिना प्रत्येक समय और प्रत्येक दिशा में स्वच्छन्द गति से चले जाते हैं।

वैसे दुनिया के लोग जहाजों की विद्या बहुत प्राचीन काल से जानते थे। आज से हजारों वर्ष पहले तक के तो इस बात के पुष्ट प्रमाण मिलते है, कि लोग जहाजों और नावों का उपयोग करते थे। इस विद्या में मिश्र देश निवासी सब से निपुण बताये जाते हैं। इतिहासकारों का कथन है, कि भारत निवासी बहुत पुराने समय से नावें और जहाज बनाते तथा उनके द्वारा विदेशों से व्यापार करते थे। त्रेता युग में, जिसको लाखो वर्ष बीत गये भारतीय नावों का उपयोग होता था, यह बात रामायण से सिद्ध है।

जहाजों का इतना वर्णन पढ़ कर उनकी बनावट के सम्बन्ध में कुछ बातें बताई जाती हैं। नावें तो आप सबों ने देखी होंगी, बस इसी शक्ल के जहाज भी होते हैं, अन्तर केवल छोटे-बड़े का है। आजकल के बड़े-बड़े जहाज एक-एक हजार फुट लम्बे होते हैं, जिनमे तीन हजार आदमी बड़े आराम से यात्रा कर सकते हैं, लम्बाई के अनुमान ही से जहाजों की चौड़ाई और ऊँचाई भी होती है। जहाजों में कई मञ्जिलें होती हैं, जिनमें सब से नीचे की मञ्जिल में इंजन, बॉयलर और कोयला आदि रखने की जगह होती है। इसके पश्चात् दूसरी-तीसरी मंजिलों मे यात्रियों के लिए अलग-

अलग कमरे बने होते हैं, जिन्हें केबिन कहते हैं। रेल के दर्जों की भाँति जहाज़ों में भी केबिन का श्रेणी-विभाजन होता है। श्रेणी के अनुरूप ही यात्रियों की सुख-सुविधाओं का प्रबन्ध होता है। सबसे ऊपर जहाज में खुली जगह होती है, जिसे 'डेक' कहते हैं। डेक पर यात्रियों के बैठने के लिए बेन्चें पड़ी रहती हैं, जिन पर बैठकर वे समय-समय पर सामुद्रिक छटा निहारने का आनन्द प्राप्त करते हैं।

इसके अतिरिक्त शौचालय, स्नानागार, रसोई घर, भोजन-भवन, औषधालय, क्रीड़ास्थल आदि सब की अलग-अलग व्यवस्था होती है। बड़े-बड़े जहाजों में टेनिस आदि खेलने के फ़ील्ड और सिनेमाघर भी बनाए जाते हैं। यात्रियों के पीने के लिए मीठे पानी की टंकियाँ भी भरी रहती हैं। सब से ऊपर जहाज के कप्तान की जगह होती है, जो वहाँ बैठकर कंम्पास, दूरबीन, बैरोमीटर आदि यन्त्रों की सहायता से जहाज की गतिविधि और समुद्र के वातावरण का प्रति क्षण निरीक्षण करता रहता है। जहाजो में छोटी-छोटी बहुत-सी किश्तियाँ इधर-उधर टँगी रहती हैं, जो जहाज के डूबने आदि की दुर्घटनाओं के समय काम में लाई जाती हैं। अब तो जहाजो मे रेडियो द्वारा बाहर सन्देश भेजने की भी व्यवस्था कर दी गई है। इसके द्वारा वह किसी विपत्ति के समय बाहर से सहायता मँगा सकता है। समुद्र मे जहाँ-तहाँ बहुतसे जहाज इसी काम के लिए तैनात रहते हैं कि वे किसी विपद्ग्रस्त जहाज द्वारा बुलाए जाने पर तुरन्त उसकी सहायता करें।

जहाँ एक ओर जहाज़ों की रक्षा के लिए अनेक उपाय सोचे गए हैं, वहाँ उन्हें नष्ट करने के भी ऐसे-ऐसे भीषण साधन निकाले हैं, कि जिनसे ईश्वर ही रक्षा करे तो भले ही प्राण बचें। जहाज़ों का संहार करने के लिए पनडुब्बे जहाज़ों का आविष्कार किया गया है। यह पनडुब्बा जहाज़ चालक की इच्छानुसार पानी के भीतर और ऊपर आगे-पीछे, दाएँ-बाएँ चारों ओर बड़ी शीघ्रता से चलाया और मोड़ा जा सकता है। इसकी बनावट ऐसी होती है कि पानी के भीतर ही भीतर वह मीलों चला जाता है, परन्तु उसमें बैठे हुए व्यक्तियों को किसी प्रकार की तकलीफ़ या असुविधा नहीं होती। पनडुब्बी में बैठकर लोग चुपके-चुपके शत्रुओं के जहाज़ के पास पहुँच जाते और वहाँ से उस पर तारपीडो नामक अस्त्र चला कर भाग जाते हैं। तारपीडो भी ऐसा भयानक हथियार है, कि इसका प्रहार होने पर बड़े से बड़ा मज़बूत जहाज़ भी नहीं बच सकता। तारपीडो के अग्रभाग में एक भयङ्कर बम और पीछे इंजन लगा रहता है। छोड़े जाने पर तारपीडो का इंजन उसे निश्चित लक्ष्य तक ले जाता है, और वहाँ उसका अग्रभाग जहाज़ से टकराते ही बम फूट कर जहाज़ के पैंदे मे बड़ा-सा छिद्र बना देता है। एक तारपीडो यन्त्र की तैयारी मे लगभग पन्द्रह हज़ार रुपये व्यय होते हैं। जैसे-जैसे लोगों ने तारपीडो से जहाज़ की रक्षा के उपाय निकाले, वैसे ही वैसे उसमें भी सुधार कर दिए गए, जिससे उसकी घातकता ज्यों की त्यों बनी रही। इस भयानक संहारक अस्त्र का

आविष्कार रावर्ट ह्वावट हेड नामक अँग्रेज ने किया था।

पनडुब्बे जहाज का आविष्कार हुए अभी पूरे पचास वर्ष भी नहीं हुए। आयर्लैंड निवासी जान पी० हालैण्ड नामक एक मामूली स्थिति के आदमी ने सन् १८९८ ई० में पनडुब्बा जहाज बना कर तैयार किया। पहले पहल हालैण्ड ने जब अपने आविष्कार की स्कीम लोगों को सुनाई, तो उन्होंने उसकी खिल्ली उड़ाई। हालैण्ड ने अपनी स्कीम कार्य रूप में परिणत करने के लिए लोगों से आर्थिक सहायता चाही, पर किसी ने उसकी बात भी न सुनी। अन्त में वह अपना देश छोड़ कर अमरीका चला गया।

अमरीका की सरकार ने हालैण्ड की बात बड़े ध्यान से सुनी और उसने उसे पनडुब्बी का कुल खर्च देने के साथ-साथ सहायता के लिए दो इंजीनियर भी उसको दिए। अन्त मे हालैण्ड अपने प्रयत्न मे सफल हुआ। अमरीका की सरकार ने पहले पनडुब्बे के लिये हालैण्ड को साढ़े चार लाख रुपये दिए। अब तो हालैण्ड मालामाल हो गया। उसने वैसे ही ६ जहाज और बनाए, जो अमरीका की सरकार द्वारा ही खरीद लिए गए। इसके पश्चात् अनेक देशों ने हालैण्ड को अतुल सम्पत्ति दे-देकर पनडुब्बे बनाए। इस प्रकार हालैण्ड धन-कुवेर बन गया।

जलयानों का यह संक्षिप्त सा परिचय है। विस्तार से लिखने के लिए बड़े समय और स्थान की आवश्यकता है।

# टेलीफ़ोन

टेलीफ़ोन वह यन्त्र है, जिसके द्वारा मनुष्य घर बैठकर अपने दूरस्थ मित्र से बात-चीत कर सकता है। शहरों में इस यन्त्र का बहुत प्रचार है। बड़े लोगों के मकान और कोठियों पर यह यन्त्र लगा रहता है, कारखानों में भी इससे काम लिया जाता है। टेलीफ़ोन की सहायता से समय
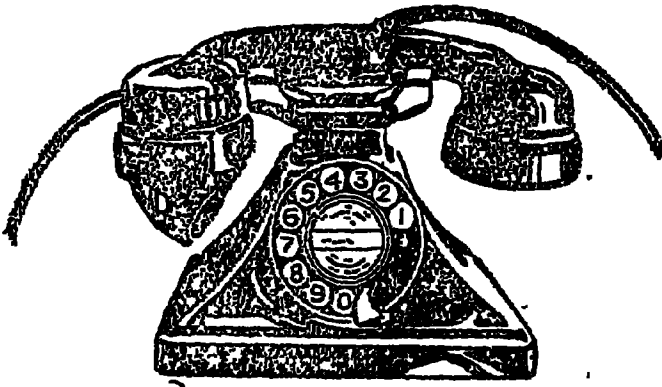
टेलीफ़ोन

बहुत बच जाता है। इस यन्त्र ने आजकल की एक बड़ी आवश्यकता का रूप धारण कर लिया है। बम्बई, कलकत्ता, मदरास आदि बड़े-बड़े शहरों में टेलीफोन न होतो लोगों का बहुत सा समय एक दूसरे के पास आने-जाने पूछ गछ में ही व्यतीत हो जाय। पहले पहल टेलीफोन द्वारा दो-तीन मील की दूरी पर ही बातें हो सकतीं थी, परन्तु अब तो एक शहर से दूसरे शहर में रहने वालों से वर्त्तालाप कर सकते हैं अगर कोई आदमी आगरे में बैठकर लाहौर के किसी मित्र

से बातें करना चाहे तो वह ऐसा बड़ी आसानी से कर सकता है। इतना ही नहीं अबतो टेलीफोन की यहाँ तक उन्नति हुई है कि एक देश का निवासी दूसरे देश के रहने वाले से भी बात कर सकता है बम्बई में बैठ कर लन्दन के लिए संदेश भेजा जा सकता है। नगर मे, नगर से शहर, और विदेश से बात-चीत करने की अलग-अलग फीस नियत हैं। जिन लोगों के यहाँ स्थायी रूप से टेलीफोन लगे हैं, उन्हें उनका वार्षिक किराया अदा करना पड़ता है।

टेलीफ़ोन मे एक यन्त्र बात करने के लिए होता है, दूसरा सुनने के लिये। सुननेवाला यन्त्र कान से लगाना पड़ता है। जिन लोगों के यहाँ ये मशीनें लगी रहती हैं, उनके नम्बर और नाम एक पुस्तक मे छपे होते हैं। जिस आदमी से आपको बातें करनी हों उसका नम्बर 'एक्सचेंज' को बताइये, वह आपके यन्त्र का सम्बन्ध उसी नम्बर से जोड़ देगा, और आप उसके साथ दिल खोल कर बातें कर सकेंगे। सब टेलीफोनों का सम्बन्ध 'एक्सचेंज' आफ़िसों से होता है, ये दफ्तर इसी जोड़-तोड़ के लिए रात-दिन खुले रहते हैं। टेलीफोन से केवल बात-चीत ही का काम नहीं लिया जाता, उनके द्वारा अखबारों को समाचार भी भेजे जाते हैं।

टेलीफोन का आविष्कार हुए अभी पूरे सौ वर्ष नहीं हुए, इसके आविष्कारक स्काटलेंड निवासी मि० एलेग्जण्डर ग्राहम बैल हैं। बैल साहब ने १८७५ ई० में, इस यन्त्र को अपने नाम

से पेटेन्ट कराया। और भी कितने ही वैज्ञानिकों ने टेलीफ़ोन निकालने के लिए उद्योग किया परन्तु उन सब में मुख्य उपर्युक्त बैल साहब ही हैं। इस सम्बन्ध में जर्मनी के रीस का नाम भी लिया जाता है। टेलीफ़ोन के आविष्कार के समय से लेकर अब तक उसमें अनेक प्रकार के परिवर्तन हुए हैं। टेलीफ़ोन को वर्तमान रूप देने वालों में अमरीका के विज्ञानाचार्य एडीसन और इँगलैंड के प्रमुख अन्वेषक प्रो० डेविड ह्य जेज के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

एलेग्जेण्डर ग्राहम बैल साधारण आर्थिक स्थिति का आदमी था, बहरे और गूँगों को शिक्षा देने में उसकी बड़ी रुचि थी, इसके लिए उसने एक स्कूल भी खोल रक्खा था। उसका जन्म स्काटलेण्ड में हुआ था परन्तु वह स्वास्थ्य ठीक न रहने के कारण इँगलेण्ड, केनाडा, बोस्टन आदि स्थानों में अपना काल-यापन करता रहा। जब टेलीफ़ोन बनकर तैयार हो गया तो उसके प्रचार और बेचने का प्रश्न सामने आया। बैल निर्धन था, उस बेचारे के पास विज्ञापनबाजी के लिए रुपया कहाँ?

पहले-पहल जब यह यन्त्र, परीक्षा के लिए एक प्रदर्शिनी में रक्खा गया तो निर्णायकों ने उसे एक साधारण खिलौना समझा और उसकी उपयोगिता पर बिल्कुल ध्यान न दिया। इतने ही में ब्रैजील के सम्राट भी वहाँ आगए और वे टेलीफ़ोन की उपयोगिता पर मुग्ध हो गये। उन्हों ने ऐसी अच्छी सूझ

के लिए आविष्कारक महाशय का अभिनन्दन किया। सम्राट् के साथ और भी कितने ही प्रसिद्ध पुरुष थे, सब ने यन्त्र की बड़ी प्रशंसा की। फिर क्या था, इतने बड़े-बड़े लोगों की सराहना व्यर्थ कैसे जा सकती थी? जनता का ध्यान एक साथ टेलीफोन की ओर आकृष्ट हो गया और उसकी लोकप्रियता बढ़ने लगी। १८७७ ई० मे एक कम्पनी ने बैल को प्रचुर धन देकर टेलीफ़ोन का अधिकार खरीद लिया और वह उसे बड़ी सफलता पूर्वक बेचने लगी।

इस समय संसार-भर में लगभग तीन करोड़ पचास लाख टेलीफोन यन्त्र व्यवहार में लाए जारहे हैं। इनमें दो करोड़ बीस लाख यन्त्र तो अकेले अमरीका में हैं। एक करोड़ दस लाख यन्त्र यूरोप मे। इंगलैण्ड मे ऐसे यन्त्रों की संख्या बीस लाख के लगभग है। इससे भली भाँति सिद्ध है कि पश्चिमी देशों में टेलीफोन की उपयोगिता किस प्रकार बढ़ रही है, और वह कितना लोकप्रिय होता जाता है। 'लाउड स्पीकर' यन्त्र के आविष्कार के कारण तो टेलीफोन की उपयोगिता बहुत बढ़ गई है। यह यन्त्र धीमी आवाज को बहुत ऊँचा और सैकड़ों आदमियों के सुनने लायक बना देता है। 'लाउड स्पीकर' द्वारा व्याख्यानदाताओ और श्रोताओं को बड़ी मदद मिलती है। इसके कारण वक्ता को भी जोर से नहीं चिल्लाना पड़ता और श्रोतागण भी व्याख्यान की सब बातें अच्छी तरह सुन लेते है। इतना ही नही 'लाउड स्पीकर' की बदौलत एक ही वक्ता का व्याख्यान एक ही समय मे, कई-कई सभाओं में,

भी सुना जा सकता है। फिर ये सभाएँ भले ही दूरस्थ देशों में क्यों न हों।

बेतार का तार निकलने से टेलीफोन में बहुत उन्नति हुई है। इसके द्वारा हजारों मील दूर बैठ कर बात-चीत की जा सकती है पहले यह बात न थी। बात-चीत करने की दूरी सीमित थी। अधिक से अधिक शहर के एक सिरे से दूसरे तक बात-चीत हो सकती थी। बात करने के लिये जिस दफ़्तर में एक टेलीफोन का दूसरे के साथ सम्बन्ध जोड़ा जाता है, उसे 'एक्सचेंज' कहते हैं। अब इस एक्सचेंज विधि में भी उन्नति हुई है, धीरे-धीरे आटोमेटिक पद्धति का अनुसरण किया जा रहा है, और इसके लिए किसी और व्यक्ति की सहायता की आवश्यकता नहीं होती।

ऊपर कहा जा चुका है कि टेलीफोन का आविष्कार एलेग्जेण्डर ग्राहम बेल ने किया। इस विज्ञान-वेत्ता का जन्म १८४७ ई० में स्काटलैण्ड के एडिनवरा नामक नगर में हुआ था। २३ वर्ष की आयु में वह एडिनवरा से अमरीका गया और वहीं उसने टेलीफ़ोन का आविष्कार किया। अमरीका में बैल को आर्थिक सहायता भी खूब मिली और सब से बढ़ कर उसे वहीं वाट्सन नामक एक वैज्ञानिक का सहयोग प्राप्त हो गया। फिर क्या था दोनों वैज्ञानिक मिल कर खोज का काम करने लगे। उनका मुख्य लक्ष्य तार में उन्नति करना था, साथ ही वे यह भी सोचा करते थे कि मनुष्य की बोली ज्यों की त्यों

एक स्थानसे दूसरे स्थान पर किस प्रकार भेजी जा सकती है। बैल और वाट्सन दोनों पृथक कमरों में रहते थे। प्रयोगों के लिए उन्होंने अपने कमरे में तार का सम्बन्ध लगा लिया था। एक दिन दोनों अपनी-अपनी प्रयोग-शालाओं में बैठे तार पर कुछ काम कर रहे थे। वाट्सन की स्प्रिंग में कुछ खराबी हो गई। उसने उसे बहुत ठीक किया परन्तु वह ठीक न हुई, अन्त में उसे क्रोध आगया और वह स्प्रिंग पर धड़ाधड़ हथौड़े की चोट करने लगा। यह उस तार की सहायता से इतनी दूर बैठे बैल को स्पष्ट सुनाई दी। वह वाट्सन के पास दौड़ा आया और कहने लगा—"लो वाट्सन, अब काम बन गया, क्रोध को शान्त कर प्रसन्न हो जाओ। तुम्हारे इस गुस्से से मनुष्य का शब्द ज्यों का त्यो भेजने की विधि समझ मे आगई।

वाट्सन इतनी दूर बैठा-बैठा हथौड़े की चोट कर रहा था, और उसकी आहट बैल के कमरे मे ज्यों की त्यों पहुँच रही थी। इसी सिद्धान्त पर काम करने से मनुष्य की आवाज भी एक स्थान से दूसरे स्थान तक भेजी जा सकती है। बस यह विचार ही टेलीफ़ोन का पूर्वरूप था और इसी के कारण उसका आविष्कार हो सका।

असल में टेलीफोन इस सिद्धान्त पर बना है कि जब हमारे मुँह से शब्द निकलता है, तब हवा मे कम्पन होता है। भिन्न-भिन्न प्रकार के शब्दों से वायु में भिन्न-भिन्न प्रकार का कम्पन होता है। हवा की लहरें इन शब्दों को बहुत दूर तक

तेजी से नहीं ले जा सकतीं, परन्तु बिजली में शब्द-कम्पन को बड़ी शीघ्रता के साथ दूर तक ले जाने की शक्ति है। इसी-लिए टेलीफ़ोन द्वारा वायु की लहरें बिजली के रूप में बदली जाती हैं, ये लहरें तारों द्वारा बड़ी तेजी से दौड़ती हैं। जब हम टेलीफ़ोन में बातें करते हैं तो लोहे की चकती ( Disc ) जो अधन्ने की तरह होती है, हवा की लहरों को बदल कर उन्हें बिजिली की लहरें बना देती है। ये लहरें तार द्वारा चलकर दूसरी चकती पर जा पहुँचती हैं। जब ये लहरें दूसरी चकती से टकराती हैं तो बिजली की तरह से फिर हवा की लहर बन जाती हैं; और ठीक वैसी ही आवाजें निकलती हैं, जैसी कि पहली लहरों से निकली थीं। ये आवाजें हमारे ओठों से निकले हुए शब्द होते हैं।

टेलीफ़ोन द्वारा सैकड़ों मील दूर से कहे हुए शब्द ज्यों के त्यों सुनाई पड़ते हैं, उन्हें सुनकर हम अपने परिचितों की आवाज पहचान सकते हैं कि कौन बोल रहा है, किसकी आवाज़ है। खाँसी, हँसी और लहजा सबका एक तरह से फ़ोटो-सा खिच जाता है। बिल्कुल स्वाभाविकता दिखाई देती है कृत्रिमता नहीं।

एलेग्जेण्डर ग्राहम बैल की मृत्यु ४ अगस्त १९२२ ई० को हुई। उस दिन सम्मान प्रकट करने लिए अमरीका और कनाडा के १ करोड़ ७० लाख टेलीफ़ोन यन्त्र एक मिनट के लिए बंद किये गये थे।

## छापे की कल

सुरेन्द्र गर्मियों की छुट्टियों में अपनी ननसार गया। वहाँ उसने अपने मामा के पास एक पुस्तक देखी, जो भोजपत्रों पर बड़े ही सुन्दर अक्षरों में चमकदार स्याही से लिखी हुई थी। सुरेन्द्र ने अपने घर पर तथा स्कूल में सैकड़ों ही किताबें देखी थीं। परन्तु यह पुस्तक उन सब से निराली थी सुरेन्द्र आश्चर्य-चकित हो, अपने मामा से पूछने लगा—"मामाजी, यह किताब कहाँ की छपी हुई है? ऐसी किताब तो मैंने आज तक कहीं नहीं देखी।" इस पर सुरेन्द्र के मामा ने उसे बताया कि यह पुस्तक छपी नहीं, हाथ की लिखी हुई है पुराने समय में लोग छापने की तरकीब नहीं जानते थे, इसलिए सब पुस्तकें हाथ ही से लिखी जाया करती थीं। उस समय एक पुस्तक तैयार करने में समय के साथ-साथ धन भी बहुत व्यय होता था इसलिए एक साधारण-सी पोथी बड़ी महँगी पड़ती थी। उन दिनों बड़े-बड़े धनवानों ही के यहाँ मुश्किल से दो-चार पुस्तकें मिलती थीं। परन्तु जबसे छापने की कला का आविष्कार हुआ है, तब से पुस्तकें सर्व साधारण के लिए भी सुलभ हो गई हैं।

मामा की उक्त बात सुनकर सुरेन्द्र की उत्सुकता और भी बढ़ गई, और वह पूछने लगा—"तो मामाजी, पुस्तक छापने की तरकीब किसने और कब निकाली?" इसके उत्तर में सुरेन्द्र के मामा ने छापे की कल का इतिहास इस प्रकार सुनाया—

इसके अनन्तर मुद्रण-कला में दिनों-दिन उन्नति होने लगी। पहले हाथ से चलाने के प्रेस बने, जिनके द्वारा धीरे-धीरे छपाई होती थी। परन्तु लोगों को उनसे सन्तोष न हुआ और वे ऐसी मशीन बनाने की युक्ति सोचने लगे, जिसके द्वारा थोड़े ही समय में बहुत-सी प्रतियाँ छापी जा सकें। होते-होते यह समस्या भी हल हो गई। १८१४ ई० में कैनिङ्ग
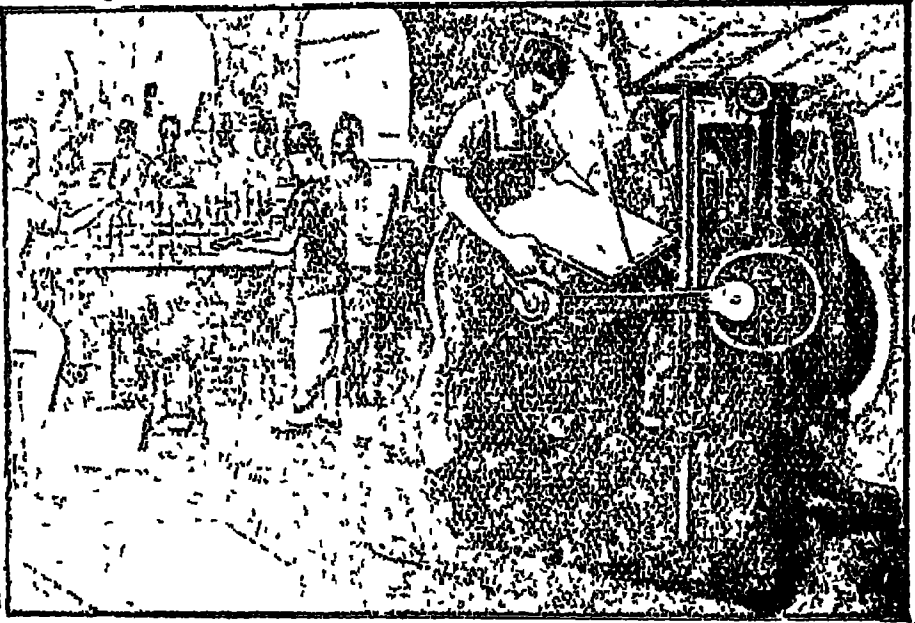
छापने की कल

महोदय ने एक ऐसी मशीन 'तैयार की जो इंजन की ताकत से चलकर घंटे-भर में हजार बारह सौ प्रतियाँ छाप सकती थी। इसके बाद तो मुद्रण-यन्त्रों में नित-नए सुधार और आविष्कार हुए। और अब ऐसी-ऐसी मशीनें बन गई हैं, जिनके द्वारा एक-एक घंटे मे पचास-पचपन हजार प्रतियाँ तक सहज ही में छप जाती हैं। इन मशीनो में अक्षरों

को जोड़ कर रख देने के पश्चात्, आदमी के हाथ लगाने की बिल्कुल आवश्यकता नहीं रहती। एक ओर से कोरा कागज़ आपसे आप चलता जाता है, और दूसरी तरफ छपे हुए कागजों की गड्डी अपने आप बनती जाती है। बीच की सब क्रियाएँ मशीन द्वारा आप ही आप हो जाती है।

सुरेन्द्र ने छपी हुई पुस्तकें अवश्य देखी थीं, परन्तु वे किस प्रकार छापी जाती है, इस सम्बन्ध मे वह कुछ भी न जानता था। वह अपने मामा द्वारा किए गये मुद्रण-कला के वर्णन को बड़ी उत्सुकता पूर्वक सुन रहा था। इतना हाल सुन चुकने पर उसने पूछा—"मामाजी, सीसा या लकड़ी के अलग-अलग अक्षरों से किताब के सफ़े के सफ़े कैसे बन जाते है?" इस पर उसके मामा ने बताया—

छापेखानों मे एक मेज के ऊपर लकड़ी के बहुत-से छोटे-छोटे खाने बने होते हैं, जिनमे अलग-अलग अक्षर भरे रहते हैं। एक आदमी जिसे प्रेस की बोल-चालमें "कम्पोज़ीटर" कहते हैं, उक्त खानों में से आवश्यकतानुसार अक्षर ले-लेकर उनकी एक लाइन बनाता है। जब बहुत-सी लाइनें बनकर तैयार हो जाती हैं, तब उन्हें मिलाकर पेज (पृष्ठ) बनाए जाते हैं। इस अक्षर जोड़ने की क्रिया को 'कम्पोजिङ्ग' कहते हैं। इस प्रकार आठ, बारह या सोलह पेज तेयार हो जाने पर उन्हे एक लोहे के चौखटे में कस देते और मशीन पर चढ़ा देते है। इसके पश्चात् मशीन पर जो कुछ क्रिया होती है, उसे प्रिंटिङ्ग कहते हैं। इस प्रकार जब पुस्तक के पूरे पृष्ठ छपकर तयार हो जाते

हैं तब उन्हे मोड़ और सींकर पुस्तक के रूप में कर लिया जाता है। बस ढले हुए अक्षरों से, जिन्हें प्रेस की भाषा में 'टाइप' कहते हैं, पुस्तकें छापने का यही संक्षिप्त विवरण है।

इस क्रिया से पुस्तकें छापने में जो व्यय पड़ता है वह हाथ की लिखाई के व्यय की अपेक्षा नहीं के बराबर है। परन्तु उद्यमशील पुरुषों को इतने से सन्तोष नहीं हुआ, वे इसमें भी और किफ़ायत करने की तरकीबें सोचने लगे। अन्त में म्यूनिस नगर के सेंड फेल्डर महोदय ने इससे भी सस्ती एक युक्ति सोच निकाली। इस युक्ति से जो छपाई होती है उसे 'लीथो' की छपाई कहते हैं। उक्त महाशय ने एक विशेष प्रकार की स्याही तैयार की जिससे वे अपना अभीष्ट विषय ताँबे के पत्र पर लिख देते थे। सूखने के पश्चात् यह स्याही इतनी कड़ी हो जाती थी कि फिर शोरे के तेज़ाब से भी न छुटती थी। इस विशेष स्याही से लिखे हुए ताम्रपत्र को जब शोरे के तेजाब से धोया जाता, तब खाली जगह का कुछ ताँबा तेजाब में गलकर घुल जाता और अक्षर ऊपर उभर आते थे। बस फिर इन उभरे हुए अक्षरों पर स्याही लगा-लगा कर चाहे जितनी प्रतियाँ छापी जा सकती थीं।

इस प्रकार की छपाई भी टाइप की छपाई की अपेक्षा विशेष सस्ती नहीं पड़ती, क्योंकि इसमें ताँबे का खर्च बहुत था अब सेण्ड फेल्डर महाशय और भी सस्ती तरकीब की खोज में लगे और अन्त मे उन्होंने एक ऐसा पत्थर खोज निकाला जो स्याही को सोख लेता है। इस पत्थर पर भी उसी विशेष

स्याही से लिखकर शोरे के तेज़ाब से धो दिया जाता था, जिससे लिखे हुए अक्षर उभर आते थे। इस पत्थर के मिल जाने से छपाई का काम बहुत सस्ता होने लगा, परन्तु इसमे भी अभी तक दिक्क़त बाक़ी थी। वह यह कि पत्थर पर उलटी लिखाई ज़रा मुश्किल से होती थी।

अन्त में "जिन खोजा तिन पाइयाँ" की कहावत के अनुसार उल्टी लिखाई का झंझट भी दूर हो गया। मसाला लगे हुए काग़ज़ पर उसी विशेष स्याही से लिख कर स्याही-सोख पत्थर पर उल्टा चिपका देने से काग़ज़ की लिखावटी पत्थर पर उल्टी आ जाती है और उस पत्थर पर स्याही लगा-लगाकर चाहे जितनी प्रतियाँ छापी जा सकती हैं। अब पत्थरों को शोरे के तेज़ाब से धोने की आवश्यकता नहीं रही। अक्षर जमे हुए पत्थर पर पानी लगा कर स्याही का बेलन फेरने से खाली पत्थर स्याही नहीं पकड़ता। वह केवल अक्षरों पर ही जमती है। इसका कारण पानी और स्याही मे की चिकनाई का पारस्परिक विरोध है।

इस तरह आजकल 'टाइप' और 'लोथो' दो प्रकार से छपाई होती है। टाइप की छपाई मे और भी कई नये सुधार और आविष्कार हुए है। अब एक प्रकार की मशीन और बनाई गई है, जिसे 'लाइनो टाइप मशीन' कहते है। पहले साधारण टाइप का कम्पोज करने के लिये बहुत-से कम्पोज़ीटरों की आवश्यकता थी, पर अब इस नये आविष्कार ने कम्पोजीटरों से भी छुट्टी दिला दी। लाइनों टाइप के आविष्कार के कारण

अब हाथ से कम्पोज करने की आवश्यकता नहीं रही। ऐसी ऐसी मशीन बन गई हैं जिनके द्वारा कम्पोज़ के साथ, टाइप ढलता भी जाता है। एक आदमी हाथ से कम्पोज़ करने की अपेक्षा लाइनो टाइप की सहायता से आठ गुना काम कर सकता है। जिस प्रकार टाइप राइटर से कोई चीज़ टाइप की जाती है, उसी प्रकार लाइनो टाइप मशीन पर काम होता है। लाइनो टाइप की चाबी दबाने से एक-एक लाइन कम्पोज़ होकर ढलती जाती है, इन्हीं लाइनों से पैराग्राफ़ और कालम बनते हैं। कम्पोजिङ्ग की इस पद्धति के आविष्कारक जर्मनी निवासी ओटमर मरजेनथेलर ( Mergenthaler ) महाशय हैं। आपने २४ वर्षों के कठोर परिश्रम के पश्चात् इसका आविष्कार किया है। इस मशीन ने छापेखाने की दुनिया में हल-चल मचादी है, उससे इतनी शीघ्रतापूर्वक छपाई होती है; कि दाँतों तले उँगली दबानी पड़ती है। लाइनो टाइप मशीन के बाद मोनो टाइप मशीन निकली है, इसमें एक-एक अक्षर कम्पोज़ होता तथा ढलता जाता है। यह मशीन प्रायः पुस्तकों के छापने में व्यवहृत होती है। इन दोनों मशीनों के आविष्कार ने छपाई का कार्य बड़ा सस्ता तथा सुलभ कर दिया है।

लाइनो टाइप मशीन द्वारा उन समाचार पत्रों के प्रकाशन में बड़ी सहायता मिलती है, जो लाखों की संख्या मे रोज़ निकलते हैं। उससे छापने वाले बहुत से झंझटों से बच जाते हैं, और समय की भी ख़ूब किफायत होती है। मुद्रण-कला सम्बन्धी ऐसे-ऐसे महत्वपूर्ण आविष्कारों ने साहित्य के सुलभ

और सस्तेपन में बड़ी मदद दी है। लाइनो टाइप की मशीन मँहगी बहुत है, इसलिए इसका प्रचार अभी सब जगह नहीं हुआ।

छापे की कल का आविष्कारक गटनबर्ग आईने पर पानी चढ़ाया करता था। जवाहरात की सुन्दरतापूर्वक काट-छाँट करने में भी उसकी बहुत ख्याति थी। एक दिन वह अपनी स्त्री के साथ बैठा ताश खेल रहा था, ताश पर बनी तस्वीर को देखकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ और वह कहने लगा कि अवश्य ही ये ठप्पो से छापे गए होंगे, इसी प्रकार खेलादि छापने के लिए ठप्पे क्यों न तैयार किए जायँ। गटनवर्ग के यह बात भर गई, और वह सारा समय इसी में बिताने लगा। पहले उसने तस्वीर छापने के ठप्पे बनाए और फिर टाइप का आविष्कार किया। उसने कई प्रकार छापने की स्याहियाँ भी निकालीं और छापे की दुनिया मे एक क्रान्ति पैदा करदी। अब तो सीसे के टाइप भी मशीनों द्वारा ही ढाले जाते हैं। अधिक छापने वाली पुस्तकों के "ईस्टीरियो प्लेट" ढालकर रख लिए जाते है, फिर उनके बार-बार कम्पोज़ करने की ज़रूरत नही रहती। जब आवश्यकता हुई, यही प्लेट फ्रेम पर कस दिए गए और छपाई शुरू होगई।

भारतवर्ष मे छापेख़ानो का प्रचार हुए लगभग २०० वर्ष हुए है। यहाँ सब से पहला छापाख़ाना बम्बई के भीमजी परिख नामक गुजराती व्यापारी ने खोला बताते हैं। उसके बाद तो यहाँ भी इनका प्रचार दिनो-दिन बढ़ता ही जाता है। देश का

कदाचित् ही कोई ऐसा नगर होगा, जहाँ एकाध छोटा-मोटा छापाखाना न हो।

## बिना तार का तार

तार द्वारा समाचार जाने-आने की बात तो सबको मालूम थी, परन्तु बिना तार के तार द्वारा भी समाचार भेजे जा सकते हैं, यह बात भी अब विज्ञान ने प्रत्यक्ष करके दिखादी। इस प्रणाली के अनुसार सारे संसार में समाचार भेजे जा सकते हैं। यो तो इस सम्बन्ध में विज्ञानाचार्य जगदीशचन्द्र वसु ने भी खोज की थी, परन्तु इस आविष्कार का श्रेय इटली निवासी मिस्टर मारकोनी ही को प्राप्त है। उन्होने यह यन्त्र १६०७ ई० में निकाला। बेतार के तार मे खम्भे गाड़ने या तार फैलाने की आवश्यकता नहीं होती। इस प्रकार के तार जहाँ लिये-दिये जाते हैं, वहाँ खम्भे गाड़ कर मशीन लगा दी जाती है। भारतवर्ष में कलकत्ता, बम्बई दिल्ली लाहौर, मद्रास आदि शहरों में तारहीन तार के खम्भे गढ़े हुए हैं। यह खम्भे जितने ही अधिक ऊँचे होते हैं, उतनी ही अधिक दूरी पर इनके द्वारा ख़बर भेजी जा सकती है।

तार-हीन तार के सिद्धान्त तथा उसके रहस्य को लिख या कहकर समझाना कठिन कार्य है। वह वैज्ञानिकों द्वारा क्रियात्मक रूप ही से भले प्रकार समझाया जा सकता है।

जिस प्रकर किसी तालाब में ढेला फेंकने से गोलाकार लहर सारे तालाब मे फैल जाती हैं, उसी तरह जोर से आवाज करने पर उसकी ध्वनि हवा में व्याप्त ईथर मे तरंगे पैदा कर देती हैं, और ये तरंगे ही बिना तार की मशीनो से टकरा कर आवाज के रूप में परिवर्तित हो जाती है। बेतार के तार द्वारा एक जगह से दूसरी जगह तक जो आवाज जाती है, उसकी ईथर-तरङ्ग की चाल एक सेकण्ड मे १,८६,००० मील बताई जाती है। हवा की शक्ति ईथर-तरङ्गों की अपेक्षा बहुत कम है। इसी लिये उसके द्वारा जो आवाज आती है, वह देर मे सुनाई पड़ती है। पहले समय में जहाज डूबने के समय बिना तार के तार का उपयोग किया जाता था। जब जहाज डूबने लगता था तो बिना तार के तार द्वारा दूसरे जहाजों को उसकी सूचना दी जाती थी, जिससे समय रहते डूबते हुए जहाज नष्ट-भ्रष्ट होने से बचाए जा सकते थे। रेडियम नामक धातु की सहायता से बिना तार के तार की तरंगे और भी अधिक शीघ्रतापूर्वक पैदा की जा सकती हैं, अतएव इस धातु के आविष्कार से बिना तार के तार में चार चाँद लग गए हैं। रेडियो के कारण इस दिशा में बहुत उन्नति हुई है। रेडियो मशीन आप अपने कमरे में लगा लीजिये और संसार-भर के गाने-बजाने, व्याख्यान तथा समाचार सुनते रहिए। फिर इस प्रकार की मशीनों के रखने में विशेष व्यय भी नहीं पड़ता। बड़े-बड़े आदमियों के भाषण रेडियो मशीन द्वारा संसार में ख़ूब फैलाए जाते है।

बिना तार के तार का आविष्कारक मि०मारकोनी १८७४ ई०

में पैदा हुआ था। २० वर्ष की आयु में इसने बिना तार के तार का आविष्कार किया, जिससे इसकी कीर्ति सर्वत्र फैल गई। मारकौनी से पहले एडीसन, मोर्स, लिंडेसे आदि ने भी इस विषय में उद्योग किया था, परन्तु ये लोग जिस तारहीन पद्धति का प्रयोग करते थे, उसके द्वारा संबाद अधिक दूर तक न भेजे जा सकते थे। मारकोनी ने बेतार के तार द्वारा समाचार भेजने और लेने दोनों प्रकार के यन्त्र बनाए और सबसे पहले उसीने अपनी पद्धति द्वारा समुद्र पार की आवाज़ सुनी। फिर तो इस यन्त्र द्वारा हज़ारों मील दूर की खबरें बात की बात मे आने-जाने लगीं और इसका प्रचार खूब बढ़ा हजारों घरों में बेतार के तार की मशीन लग गई और मारकौनी की प्रतिष्ठा का ठिकाना न रहा। बधाई के तारों ने उसका घर भर दिया और सैकड़ों स्थानों से उसे बुलावे आने लगे। वास्तव में मौलिक प्रतिभा शक्ति की बड़ी महत्ता है। अस्तु,

अब तक रेडियो मशीन द्वारा समाचार और व्याख्यान तो भेजे ही जाते थे, परन्तु अब उसके द्वारा एक स्थान से दूसरे तक चित्र भी आने-जाने लगे है। जिस चित्र को कहीं भेजना होता है पहले विशेष यंत्र द्वारा उसका विद्युत् प्रतिबिंध तैयार किया जाता हैं। इस प्रतिबिम्ब को तैयार करने के लिए, चित्र को एक घूमते हुए बेलन पर चिपका देते हैं और फिर इस चित्र पर एक मजबूत लेन्स ( Lens ) की सहायता से प्रकाश फैका जाता है, ज्यों-ज्यों बेलन अपनी कक्षा के चारों ओर घूमता है, त्यों-त्यों चित्र के सब भाग धीरे-धीरे प्रकाशित होते जाते हैं,

बिना तार के तार का आविष्कारक मि० मारकोनी

और वैज्ञानिक विधि से एक स्थान से भेजा हुआ चित्र ज्यों का त्यों दूसरी जगह अङ्कित हो जाता है।

इंगलैण्ड तथा अन्य पश्चिमीय देशों में तार से चित्र भेजने का प्रचार बढ़ रहा है। वहाँ इस काम के लिए एक लाइन स्थापित करदी गई है। साधारणतः बर्लिन से लन्दन तक दो घंटे में चित्र पहुँच जाता है। भेजने की फ़ीस एक पौण्ड से लेकर पाँच पौण्ड तक चित्र के आकार-प्रकार के अनुसार ली जाती है। मनुष्य का फ़ोटू ही नहीं लेखों के चित्र भी इस यन्त्र द्वारा भेजे जा सकते हैं। एक बार एक घंटे में छपे हुए साठ पृष्ठों के फ़ोटो इस पद्धति द्वारा भेजे गये। अमरीका में भी इस प्रकार चित्र भेजने का प्रबन्ध किया गया है। जगह-जगह चित्र-सर्विस स्थापित की जा रही है, जिसके द्वारा महत्त्वपूर्ण काग़ज़ों के चित्र, रेखा-चित्र, फ़ोटो, नक़शे अपराधियों के अँगूठे और उँगलियों के निशान तक सफलता पूर्वक भेजे जा रहे हैं। अमरीका में तार-चित्रों की लोक प्रियता बहुत बढ़ती जा रही है। वहाँ के बड़े-बड़े व्यापारी अपने-अपने फ़र्मों का विज्ञापन इस पद्धति द्वारा करके ख़ूब लाभ उठाते हैं। समाचार पत्रों में छपने के लिये चित्र भी तार द्वारा आने-जाने लगे हैं। अमरीका के अख़बार तार-चित्रों का ख़ूब व्यवहार करते हैं। एक बार अमरीका के एक समाचार पत्र के प्रथम पृष्ठ का चित्र २५०० मील भेजा गया था। इसके पहुँचने में केवल तीन घंटे लगे थे।

अँग्रेजी में तार द्वारा चित्र भेजने को 'टेली फ़ोटो' कहते

हैं। टेली फ़ोटो ने निस्सन्देह समाचार-संसार में अद्भुत क्रान्ति करदी है। अबसे कुछ काल पूर्व कौन जानता था कि समाचारों की भाँति लोगों के फ़ोटो और लेखों के चित्र भी, बात कहते, सैकड़ों-सहस्रों मील भेजे जा सकेंगे। विलायत मे यह पद्धति सर्वसाधारण के लिए चार पाँच वर्ष से स्थापित हुई है, और उसका खूब प्रचार बढ़ रहा है। समाचार-पत्रों और न्यायालयों को 'टेली फ़ोटो से बहुत बड़ा लाभ होने की संभावना है।

सचमुच विज्ञान ने अपनी अद्भुत शक्ति द्वारा संसार के सब देशों और नगरों को एक दूसरे के समीप कर दिया है कि दूरी के कारण अब उनमे कोई विशेष भेद नहीं मालूम देता। अगर वैज्ञानिक उन्नति का यही क्रम जारी रहा तो वह दिन दूर नहीं, जब सारा संसार एक कुटुम्ब के रूप में दिखाई देगा।

# मोटरकार

ऐसा कौनसा व्यक्ति है, जो इसयुग में मोटरकार को न जानता हो। छोटे-बड़े सभी नगरों में मोटरकार का प्रचार बढ़ रहा है। जिस सड़क पर जाइये उसी पर मोटरें चलती दिखाई देंगी। मोटरकार और मोटर लारियाँ दोनों एक ही बात हैं केवल रूप का भेद है। मोटरों से यात्रियों को बड़ी
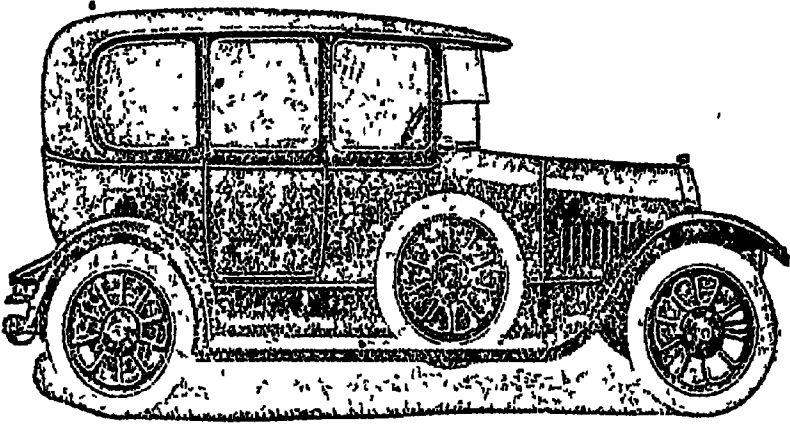
सुविधा हो गई है, जिन स्थानों में रेल नहीं थी, उनके रहने वालों को मुसीबत भोगनी पड़ती थी, परन्तु मोटर लारियों ने इस कठिनाई को दूर कर दिया। मोटर गाड़ियों का आविष्कार हुए अधिक दिन नहीं हुए, फिर भी उनका प्रचार बहुत बढ़ गया है। दिन हो या रात मोटर में बैठ कर कहीं भी चल दीजिये, बड़ा आराम मिलेगा। ऐसे उपयोगी आविष्कार की जितनी सराहना की जाय थोड़ी है।

मोटरकार के समान एक गाड़ी बनाने के लिये १७६९ ई० से उद्योग हो रहा था। उस समय कगन नामक व्यक्ति ने भाप से चलने वाली एक गाड़ी बनाई जो, दीवार से टकरा कर टूट गई, इसलिए बेचारे कगन को जेल की हवा खानी पड़ी। फिर १८२७ ई० में गोल्ड्सवर्दी गर्नी ने घण्टे में १५ मील चलने वाली एक गाड़ी बनाई। इसके बाद १८६० ई० में लेन्वायर नामक एक आदमी ने गैस से चलने वाला इंजन बनाया। जर्मनी के डाक्टर निकोलस ने इस इंजन में सुधार कर उसे अच्छा रूप दे दिया। पैट्रोल द्वारा गाड़ी चलाने की विधि सबसे पहले जर्मनी के ढैमलर नामक व्यक्ति को सूझी और इसी ने १८८७ ई० मे पैट्रोल से चलने वाली एक मोटर बनाई थी।

पैट्रोल द्वारा इंजन चलाने की बात मालूम होने से हवाई जहाजों और मोटरों की ख़ूब उन्नति हुई। क्योंकि भाप द्वारा चलने वाले इंजन बहुत भारी होते थे, उनका उपयोग हवा में उड़ने वाले जहाजो में भला कैसे हो सकता था। मोटरों मे भी इतने बड़े और भारी इंजनो के लिये गुंजायश न थी। फिर स्टीम इंजनों के कारण मोटरो की कीमत इतनी बढ़ जाती कि उनका खरीदना कठिन हो जाता। इस कमी को दूर करने के लिये ही वैज्ञानिकों ने गैस के इंजन निकाले, परन्तु इनसे भी मतलब हल न हुआ। अन्त में पैट्रोल द्वारा इंजन चलाने की बात समझ में आगई और उनसे हवाई जहाजो तथा मोटर-कारों की बहुत उन्नति हुई।

जब पैट्रोल द्वारा चलने वाली मोटरों का आविष्कार हुआ

तो लोग हँसने लगे, उस समय उन्हें खतरनाक खिलौने से अधिक महत्व न दिया जाता था। किसी मोटर में एक आदमी बैठ सकता था और किसी में दो तथा तीन बैठते थे। इन गाड़ियों की बनावट बड़ी ही भद्दी और बेढंगी थी, वे चलते समय बड़ा शोर करती थीं।। इस समय जर्मनी में दो मोटरकार बनीं जिनकी रफ्तार एक घण्टे में आठ-दस मील से अधिक न थी। परन्तु अब देखिये, कितनी ही मोटर तो हवा से होड़ बद कर दौड़ती हैं। उनकी चाल को देखकर बड़ा आश्चर्य होता है। सचमुच मोटर के आविष्कार ने यान-जगत् में एक क्रांति कर दी है। इतना ही नहीं, मोटर के कारण पैट्रोल की क़द्र बढ़ गई, पहिले यह तेल निरर्थक पदार्थ समझा जाता था, कहीं कहीं इससे सफाई का काम अवश्य लिया जाता था। परन्तु अब यह मोटर की रूह बन गया है, बिना पैट्रोल के मोटर टस से मस नहीं हो सकती और न हवाई जहाज़ चल सकते हैं। इन्हीं दिनों फ्रांस के दो व्यक्तियों द्वारा मोटर बाइसिकल का निर्माण हुआ। पहले मोटरों में ठोस पहिये लगाए जाते थे, परन्तु जब से रबर के टायर ट्यूबों की व्यवस्था हुई तब से पुरानी प्रथा दूर करदी गई। रबर के ट्यूबों में हवा भरी जाती है, इससे मोटर की चाल में बड़ा सुभीता होता है, और वह बड़ी तेज़ी से दौड़ी चली जाती है। रबर टायर की गाड़ी में बैठने वालों को भी बड़ा आराम मिलता है। वे रास्ते के धक्के-मुक्को से बच कर मज़े मे बैठे चले जाते है।

मोटरों का हलकापन सदैव दृष्टि-पथ में रक्खा गया है,

पैट्रोल से चलने वाले इंजन की भी इसीलिए आवश्यकता हुई। फिर जिस स्टील ( इस्पात ) से उसके कल पुर्जे तथा अन्य भाग बनाये जाते हैं, वह भी बड़ा हलका होता है। अगर यह लोहा इतना हलका और मजबूत न होता तो इतनी शीघ्रगामिनी मोटरकार का तैयार होना बड़ा कठिन था। भारी लोहे से कार का भार बढ़ जाता और वह इस तेजी के साथ हरगिज़ न चल सकती। अतएव इस्पात का हलकापन इसके निर्माण में विशेष स्थान रखता है।

रेल की अपेक्षा मोटर की यात्रा में लोगों को कम ख़र्च करना पड़ता है। मोटर लॉरियों ने बोझ ढोने और देहात की सवारियों को सुविधा पहुँचाने में बड़ी सहायता पहुँचाई है। इसमें सन्देह नहीं कि मोटरों के कारण लोगो को घोड़ा-गाड़ी तथा इक्के-ताँगों की उतनी आवश्यकता नहीं रही, जितनी कि पहले रहा करती थी। और अगर मोटरो का इसी प्रकार प्रचार बढ़ता गया तो सम्भव है, सर्वत्र मोटर ही मोटर दिखाई देने लगें, और घोड़ो को सदा के लिए छुट्टी मिल जाय। शान्ति के समय तो मोटर उपयोगी है ही, युद्ध काल मे भी उसकी बड़ी उपयोगिता है। गत योरोपीय महायुद्ध में मोटरों ने बड़ी भारी सेवाएँ कीं। इस लड़ाई में सचमुच मोटरो के महत्व को एक विशेष स्थान देना पड़ेगा।

अब तो मोटरें कितनी ही क़िस्म की देखने में आती है। नित नये नमूने निकलते रहते है। भाँति-भाँति के फ़ैशनो की गाड़ियाँ बन रही हैं। इनके बनाने के लिये जो कारख़ाने खुले

हुए हैं, उनमें लाखों आदमी काम करते हैं, और करोड़ों रुपयों की मोटरें बिकती हैं। संसार में मोटरों का सबसे अधिक प्रचार सम्भवतः अमरीका में है, और वहीं उनके बड़े-बड़े कारख़ाने भी हैं। हिन्दुस्तान में भी पिछले बीस वर्षों में इनका प्रचार ख़ूब बढ़ा है। जो लोग सम्पन्न हैं, वे तो अपनी स्वतन्त्र कार ख़रीद लेते हैं, परन्तु जिनकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं, वे नियत किराया देकर मोटरों द्वारा यात्रा करते हैं। मोटरों में बैठने के लिए बड़े आराम की सीटें बनी होती हैं। उनमें एक घड़ी लगी रहती है, जिससे यात्रा का परिमाण मालूम पड़ता रहता है। इसी घड़ी की सहायता से किराये की मोटरों में यह भी मालूम हो जाता है कि हमने कितनी यात्रा की और उसका क्या किराया चुकाना चाहिये। किराया स्वयं एक चिट पर अङ्कित होकर सामने आ जाता है। बड़े-बड़े नगरों में जो कार किराये पर चलती हैं, वे 'टैक्सी' कहलाती हैं। 'बस गाड़ियाँ' भी मोटर ही की तरह होती हैं। ये दो-दो मंजिल की भी होती हैं। ट्राम गाड़ी बिजली से चलती है। इसके लिए पटरी बिछी होती है, उसी पर वह दिन भर दौड़ती रहती है। देहली, बम्बई, कलकत्ता आदि बड़े-बड़े शहरों में जहाँ बाजार लम्बे-चौड़े हैं, ट्राम जारी है। रेल की तरह थोड़ी-थोड़ी दूर पर इसके भी स्टेशन होते हैं।

ज्यों-ज्यों मोटरों में सुधार होते जाते हैं, त्यों-त्यों उनकी चाल भी तेज होती जाती है। एक मिनट में एक मील चलने वाली मोटरें तो बहुत साधारण-सी समझी जाती हैं। ऐसी-

ऐसी मोटरें भी बन गई हैं, जो हवा से बातें करती हुई घण्टे में सौ-सौ मील दौड़ती चली जाती हैं। यह सब विज्ञान की करामात है।

---

## दूरदर्शक यन्त्र

क्लास में आते ही मास्टर साहब ने एक चीज़ दिखा कर लड़कों से पूछा—"तुम लोग जानते हो, यह क्या है?" मास्टर साहब का सवाल सुनते ही सब लड़कों का ध्यान उनकी हाथ की चीज़ की ओर गया। मैंने भी ध्यानपूर्वक देखा—दो काले रंग के गिलास आपस में जुड़े हुए थे। वे किस चीज़ के बने थे, सो इतनी दूर से न जाना जा सका। मास्टर साहब का प्रश्न सुन कर और सब लड़के तो चुप रहे, केवल गोपाल ने उत्तर दिया—"हाँ, मास्टर साहब मैं जानता हूँ, यह 'दूरबीन' है।" इस पर मास्टर साहब ने गोपाल को सम्बोधित कर पूछा—"गोपाल, बतला सकते हो, यह किस काम आती है?" इस पर गोपाल बोला—"मास्टर साहब इससे दूर की चीज़ें देखी जाती हैं। मैं पिछले जून के महीने मे अपने बाबूजी के साथ काश्मीर गया था, तब बाबू ने ऐसी ही एक दूरबीन खरीदी थी। हम काश्मीर में दूरबीन द्वारा दूर के पहाड़, वन, झील आदि देखा करते थे। इसके द्वारा देखने से दूर की चीज़ें बिल्कुल पास और साफ-साफ दिखाई देती थीं।"

मास्टर साहब ने फिर पूछा—"अच्छा इसके सम्बन्ध में और कुछ भी जानते हो ?" इस पर गोपाल भी चुप रहा, तब मास्टर साहब कहने लगे—"बालको ! सुनो, आज तुम्हें दूरबीन के सम्बन्ध में बहुत-सी बातें बतलाते हैं। आधुनिक युग के अनेक आश्चर्यजनक आविष्कारों में से यह भी एक है। जितने भी आविष्कार हुए हैं, उनमें ऐसे बहुत कम हैं, जिनका इरादा करके अन्वेषण किया गया हो। अधिकांश आविष्कार ऐसे हैं, जिनका ज्ञान किसी आकस्मिक घटनावश हुआ है। स्टीम-इंजन टेलीफ़ोन, एक्स किरण आदि सब ऐसे ही आविष्कार हैं। दूरबीन के सम्बन्ध में भी एक ऐसी ही किवदन्ती प्रसिद्ध है। कहते हैं, मिडिलवर्ग निवासी जचरिया जॉनसन नामक चश्मे के व्यापारी के बालक एक दिन चश्मे के काँचों से खेल रहे थे। अचानक एक लड़का दो काँच आगे पीछे लगाकर देखने लगा। देखते ही देखते वह आश्चर्य से चिल्ला उठा—"देखो-देखो इन काँचों में होकर देखने से गिरजाघर की मीनार कितनी पास दिखाई देती है।" बच्चे की बात सुनकर जचरिया जॉनसन ने भी उसी प्रकार दो काँचों को आगे-पीछे लगाकर देखा, तो उसमें होकर सचमुच दूर की चीज़ें पास दिखाई देती थीं। बस, यही आकस्मिक घटना दूरबीन के आविष्कार का आदि कारण है। इसके बाद उक्त व्यापारी ने एक लकड़ी के तख्ते पर दो काँच आगे-पीछे जोड़कर उसने दूर की चीज़ें देखने का काम लेना शुरू किया। बस, संसार की सबसे पहली दूरबीन यही थी। इस प्रकार सन् १६०० के लगभग हॉलैण्ड देश मे दूरबीन का

सर्व-प्रथम आविष्कार हुआ।

कुछ लोगों का मत है कि, दूरबीन का सर्व प्रथम आविष्कारक मिडिलवर्ग ही का रहने वाला हैज लिवर्शी नामक एक डच था। वह भी चश्मों का व्यापारी था और उसे भी दूरबीन के इस अलौकिक गुण का इसी प्रकार अकस्मात अनुभव हुआ। जो हो, परन्तु दूरबीन का जन्म हुआ हॉलैण्ड ही मे। कौन जानता था कि एक साधारण-सी घटना के परिणाम स्वरूप ऐसी अद्भुत वस्तु हाथ लगेगी, जो वैज्ञानिक जगत् मे युगान्तर उपस्थित कर देगी। वस्तुतः दूरबीन के द्वारा विज्ञान के विशेषतः खगोल के ऐसे-ऐसे गूढ़ रहस्यों का उद्‌घाटन हुआ है, जिनकी इससे पूर्व कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।

हॉलैण्ड के पश्चात् उत्तरी यूरोप के पेरिस आदि नगरो में दूरबीन का प्रचार हुआ। सुप्रसिद्ध खगोल-विद्या विशारद गेलीलियो ने दूरबीन में अनेक आवश्यक सुधार कर उसे बहुत कुछ उपयोगी बना दिया। परन्तु गेलीलियो की बनाई सब से बढ़िया दूरबीन आजकल की साधारण दूरबीन के भी समान न थी। फिर भी उसने अपनी उस दूरबीन द्वारा सूर्य के काले धब्बे, शनि के चारों ओर वलय का होना, शुक्र का घटना-बढ़ना आदि खगोल सम्बन्धी अनेक अन्वेषण कर डाले।

दूरबीन समुद्र यात्रियों के भी बड़े काम की वस्तु सिद्ध हुई है। इसकी मदद से समुद्र-यात्री अनेक विघ्न-बाधाओं से जहाज़ों की रक्षा करने में समर्थ होते है। युद्ध क्षेत्रों मे भी दूरबीन खूब काम देती है। सुदूर आकाश मे उड़ते हुए वायु-

यान में बैठकर पृथ्वीतल पर छिपी हुई शत्रु सेना का पता लगा लेना दूरबीन के द्वारा ही सम्भव है।

दूरबीन की बनावट कुछ पेचदार नहीं होती। इसमें दो पोलो के दोनों सिरो पर दो-दो काँच लगे रहते हैं। और एक
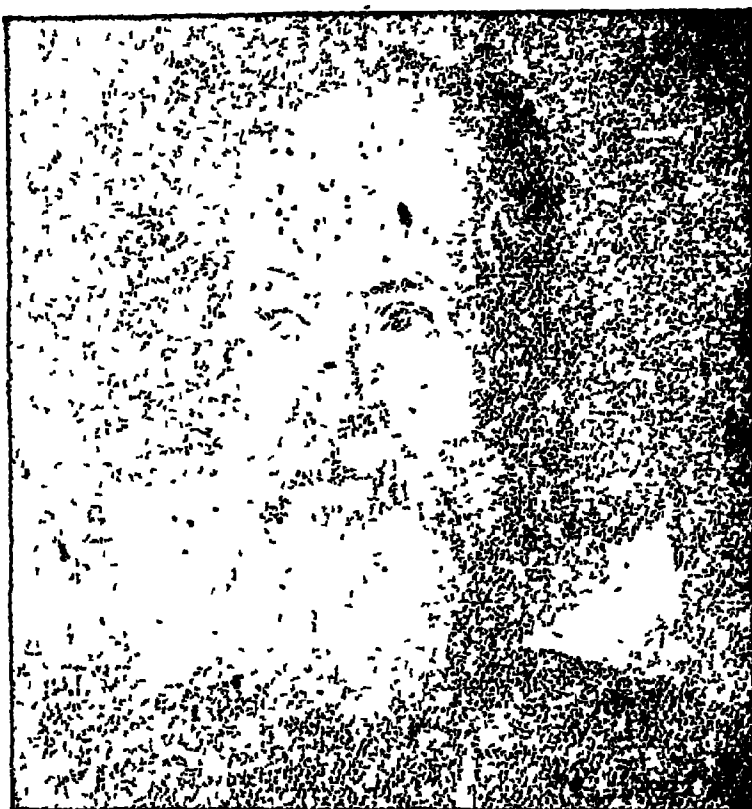
गेलीलियो

काँच से दूसरे काँच का अन्तर घटाने-बढ़ाने की सुविधा के अनुसार रक्खा जाता है। इसके आखिरी सिरे पर जो शीशा लगा होता है, उससे दूर की चीज पास दीख पड़ती है और आँख के समीप वाले काँच से उसका रूप बढ़ा हुआ दिखाई देता है

दूसरे प्रकार की एक दूरबीन और होती है, जिसमें वस्तु का प्रतिबिम्ब फ़ोटो के केमरे की भाँति पहले काँच पर पड़ता है, जो फिर आँख के पास वाले शीशे पर पड़कर निकट तथा बड़ा दिखाई देता है।

खगोल-विद्या-विशारदों ने बड़ी-बड़ी और बहुत शक्ति-शाली अनेक दूरबीन बनाई हैं। यूरोप के कितने ही नगरों मे आकाश मण्डल का अध्ययन करने के लिए वेधशालाएँ बनी हुई हैं, जिनमें बड़ी-बड़ी दूरबीन लगी हुई है। संसार का सबसे बड़ा दूरदर्शक यन्त्र अमरीका के केलीफ़ोर्निया नगर की माउण्ट विल्सन नामक वेधशाला में लगा हुआ है। इस यन्त्र का वज़न २६०० मन के लगभग बताया जाता है। यह इस ढंग से लगाया गया है कि आवश्यकतानुसार प्रत्येक दिशा के प्रत्येक कोने की वस्तु इसके द्वारा देखी जा सके। इसका बाहरी शीशा १०० इंच व्यास का है, जिसका वज़न १२२ मन के लगभग है।

बाज़ारों में छोटी-छोटी दूरबीनें भी बिकती हैं, जो सैर-सपाटा करने वालों और शिकारियों के बड़े काम की हैं। यह तो रही ऐसी दूरबीनों की बात जिनके द्वारा वही वस्तुएँ देखी जा सकी हैं, जो व्यवधान रहित बिल्कुल आँखों के सामने होती हैं। इसके अतिरिक्त वैज्ञानिकों ने एक दूसरे प्रकार के दूरदर्शक यन्त्र का आविष्कार किया है, जिसकी सहायता से विशाल वनों और उत्तुङ्ग पर्वतों की आड़ मे स्थित, सहस्रों मील दूर की वस्तु को आप अपने कमरे में बैठे हुए देख सकते हैं। इस नवाविष्कृत दूरदर्शक यन्त्र का नाम 'टेलीविजन' है।

टेलीविजन द्वारा दूर-स्थित वस्तु का चित्र यन्त्र में लगे हुए एक छोटे-से परदे पर उसी तरह दिखाई देता है, जिस तरह सिनेमा के परदे पर चलती-फिरती तस्वीरें देखी जाती हैं। इस यन्त्र द्वारा विलायत में होनेवाली घुड़दौड़ घर बैठे हुए भले प्रकार देखी जा सकती है। रेडियो की सहायता से, दूर देशों में होने वाले व्याख्यान या गाने तो सुने ही जाते थे, अब टेलीविजन की सहायता से गाने और व्याख्यान के साथ-साथ गायक और व्याख्यानदाता का स्वरूप भी देख सकेंगे। इस यन्त्र के आविष्कार ने एक देश से दूसरे देश की दूरी को इतना कम कर दिया है कि उनमे अब कुछ अन्तर नहीं मालूम पड़ता।

पुलिस के कामों में तो इस यन्त्र से बहुत ही सहायता मिली है। आज यदि कोई अपराधी रेल द्वारा भाग कर कहीं जाता है, तो टेलीविज़न की सहायता से, एक क्षण ही में उसका चित्र सब रेलवे स्टेशनों की पुलिस के पास भेज दिया जाता है। बस, अब वह जिस स्टेशन पर भी उतरेगा उसी की पुलिस उसका हुलिया देखकर उसे तुरन्त गिरफ्तार कर लेगी। इसी प्रकार जहाज़ों तथा वायुयानों पर भी अपराधी पकड़े जा सकते हैं। अब विलायत में ऐसे रेडियो यन्त्र लगाये जा रहे हैं, जिनमें टेलीविज़न भी संयुक्त रहेगा। इन यन्त्रों द्वारा दूर-देशस्थ दो व्यक्ति परस्पर बात-चीत करते हुए एक दूसरे को देख भी सकेंगे।

वैज्ञानिकों की कृपा से कुछ ही दिनों में टेलीविजन का भी प्रचार टेलीफोन या रेडियो की भाँति नगर-नगर में हो

जायगा। कुछ काल पश्चात् जब ये नए दूरदर्शक यन्त्र प्रचार पाजायँगे तब सिनेमा, थियेटर, घुड़दौड़ या और कोई मेला तमाशा देखने के लिए, हमें अपने कमरे से बाहर निकल कर नहीं जाना पड़ेगा। इतना ही नहीं, विद्यार्थी भी घर के कमरे में बैठा हुआ अपने शिक्षक का व्याख्यान सुन सकेगा और वह स्कूल में ब्लैक बोर्ड पर लिखकर जो कुछ समझावेगा उसे देख सकेगा।

दूरबीन की एक बहन खुर्दबीन भी है, जिसके द्वारा छोटी-से-छोटी चीज बड़े आकार में दिखाई देती है। जो कीटाणु लाख प्रयत्न करने पर भी नंगी आँखों से नहीं देखे जा सकते, वे खुर्दबीन द्वारा बड़ी अच्छी तरह दृष्टिगत होते हैं। ऐसी-ऐसी खुर्दबीन मौजूद हैं, जिनके द्वारा बारीक बाल, खाट की पाटी के समान दिखाई देता है। इसी से इस यन्त्र की महत्ता और उपयोगिता का अनुमान किया जा सकता है।

मास्टर साहब दूरबीन और खुर्दबीन के सम्बन्ध में इतना ही बता पाये थे कि क्लास का समय पूरा हो गया, और वे उठ कर दूसरे कमरे में चले गए।

# वायुयान

वायुयानों की रचना ने आधुनिक जगत् को आश्चर्य-सागर में निमग्न कर दिया है। जिस समय हवाई जहाज़ पक्षियों की भाँति पंख फड़फड़ाते हुए, इधर से उधर दौड़ते और महीनों के मार्ग को घंटों में समाप्त कर डालते हैं, उस समय 'विज्ञान की बलिहारी' के सिवा और कुछ मुख से नहीं निकलता। अभी कुछ दिन पूर्व श्री रामचन्द्रजी के पुष्पक विमान की बात कोरी कवि-कल्पना समझी जाती थी, लोग ऐसी बातें सुनकर हँस पड़ते थे और उन्हें गप्प—कोरी गप्प कहकर टाल देते थे। परन्तु आज विज्ञान ने सिद्ध करके दिखा दिया कि पानी की भाँति हवा पर भी जहाज़ चल सकते हैं, और वे हज़ारों मील लम्बी यात्रा तय करने में मनुष्य को पूरी सहायता दे सकते हैं।

मनुष्य के हृदय में हवा में उड़ने की इच्छा बहुत दिनों से पैदा हो गई थी। पहले-पहल उसने बहुत सोच-विचार के साथ गुब्बारों का आविष्कार किया और कुछ मसालों की सहायता से उन्हें आकाश में उड़ाया भी। जब गुब्बारे आकाश में ऊँचे उड़ने लगे तो, उनमें सवारी करने की इच्छा उत्पन्न हुई; परन्तु इन गुब्बारों में बैठकर उड़ना खतरे से खाली न था। अतः पहले-पहल मुर्गी, बतख, भेड़, गिध आदि गुब्बारों में उड़ाये गए। जब ये सकुशल पृथ्वी पर वापस आ गये तो आदमी के उड़ने की हिम्मत हुई, और कितने ही आदमी बैलून

में बैठ कर दस-बारह हज़ार फीट तक आकाश में उड़े भी। परन्तु इन गुब्बारों पर नियन्त्रण कुछ न होता था, हवा उन्हें जिधर ले जाती थी, उधर ही वे उड़े चले जाते थे। कुछ गुब्बारे लम्बी रस्सी बाँध कर उड़ाये गये, फिर भी उन पर नियन्त्रण न हो सका। ये उसी प्रकार के गुब्बारे थे, जो प्रायः
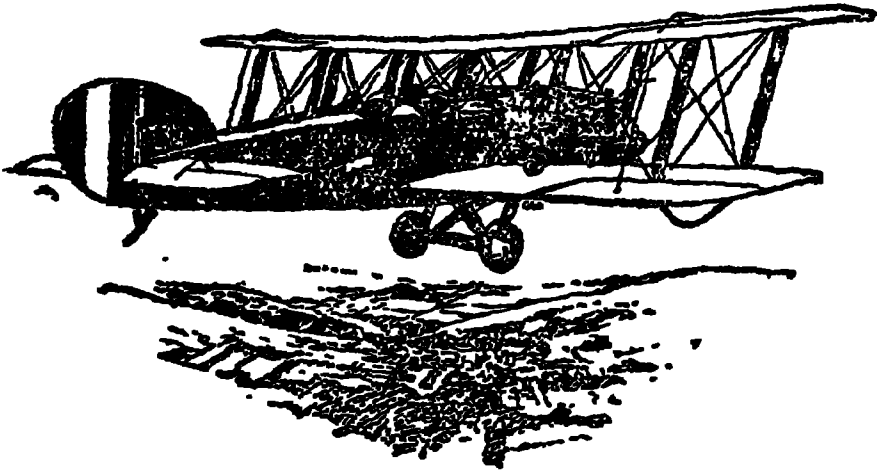
वायुयान

विवाह-शादियों के अवसर पर उड़ाए जाते हैं। जो लोग उनमें उड़ते थे, वे कभी-कभी तो ऐसी बुरी जगह जा पड़ते थे कि उनका जीवन ही संकट-पूर्ण हो जाता था। आँधी आ जाने पर तो गुब्बारे की खैर ही न थी।

यों तो अनेक लोगों ने गुब्बारे बनाये, परन्तु सबसे पहले बड़ा गुब्बारा १८८३ ई० में माउण्ट गो फायर नामक बन्धुओं ने यार किया। जर्मन के ज़ेप्लिन और ब्रेज़िल के सेण्डासडमोण्ट

ने भी इस दिशा में अच्छी उन्नति की। इन्होंने अपने गुब्बारों को पेरिस की एक मीनार के चारों तरफ़ उड़ा कर तीन लाख रुपये का इनाम पाया। उस समय ये गुब्बारे इच्छानुसार घुमाए-फिराये जा सकते थे। गुब्बारे बनाने वालों में सबसे अधिक श्रेय ज़ेप्लिन साहब ही को है। इनका बनाया गुब्बारा 'ज़ेप्लिन' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसमें लगभग चौबीस आदमियों के बैठने की जगह बनाई गई। यह हवाई जहाज़ लम्बा, हलका परन्तु बहुत सुदृढ़ था। उसका बाहरी ढाँचा ताँबे, निकल या एल्यूमीनियम का बनाया जाता था। ज़ेप्लिन ने अपने जहाज़ का ऊपरी भाग पतली टीन का बनाया, उसके भीतर गैस भरे हुए कई गुब्बारे रक्खे, जिससे अब उसके गिरने का डर न रहा, क्योंकि एक गुब्बारे के फटने पर दूसरे गुब्बारे उसे गिरने से रोकते थे। प्रथम तो लोगों ने ज़ेप्लिन का उपहास किया, परन्तु जब उसके एक जहाज़ ने २७० मील की यात्रा तय की, तो उनकी आँखें खुलीं। फिर क्या था, चारों ओर से जेप्लिन को बधाई और धन्यवाद मिलने लगे। जर्मन सरकार ने भी उसे ख़ूब आर्थिक सहायता दी। अन्य धनी-मानी सज्जनों की तरफ़ से भी प्रोत्साहन दिये गये। गत महायुद्ध में इस हवाई जहाज़ की कारगुज़ारी देख कर दुनिया दंग रह गई। काउण्ट जेप्लिन की मृत्यु हुए बहुत दिन नहीं हुए, उन्होंने १६१७ ई० ही में परलोक यात्रा की है।

जेप्लिन का हवाई जहाज़ निकल तो आया, परन्तु उसमें कई दोष थे। इस जहाज़ में गैस भरे गुब्बारे रखने पड़ते थे,

जिससे उसका आकार बड़ा हो जाता था और वह द्रुतगति से न उड़ सकता था अब वैज्ञानिक लोग एक ऐसे वायुयान की खोज मे लग गये, जिसमे गैस न भरनी पड़े और जो हलका होने के कारण तीव्रता पूर्वक आकाश में उड़ने लगे। जर्मनी के औक्टोचैएट और अमरीका के लिनियन्थल नामक वैज्ञानिकों ने ऐसे जहाज़ बनाये और उन्हें कुछ सफलता भी मिली। इँगलैंड के सर हिरम मैक्लिम ने भी इस दिशा में चेष्टा की, परन्तु इन्हे पूरी कामयाबी न हुई। अमरीका के प्रो० लाङ्गले ने अमरीका सरकार से साढ़े सात लाख रुपये लेकर निर्दोष हवाई जहाज़ बनाने की प्रतिज्ञा की परन्तु वे भी अपने उद्योग मे असफल ही रहे। उन्हें सरकारी रुपया बरबाद करने की लज्जा के कारण आत्मघात तक करना पड़ा।

इस विषय में बार-बार असफलता होने पर भी वैज्ञानिक लोगों को निराशा नहीं हुई, और वे बराबर इस धुन मे लगे रहे। अन्त में अमरीका के ओरविल राइट और विलवर राइट नामक दो भाइयों को हवाई जहाज़ बनाने मे सफलता हुई। ये लोग डेटन नामक नगर में साइकिल मरम्मत करने की दुकान करते थे। इन्होंने १६०० ई० में अपना काम शुरू किया और तीन वर्ष बाद १६०३ ई० में उसे समाप्त कर दिया। दोनों भाई बस्ती छोड़ कर समुद्र के किनारे एकान्त में चले गये और वहीं वे अनेक अन्वेषणों के पश्चात् अपने उद्देश्य मे सफल हुए। राइटबन्धुओं के जहाज का आकार-प्रकार पक्षियो से बहुत मिलता-जुलता है। पहले-पहल यह जहाज़ हवा में ५६ मिनट से अधिक न

ठहर सका। फिर उसने २४ मील तक सफ़र किया। इसके बाद वह २६ मील तक उड़ाया गया। एक उड़ाके ने हवाई जहाज़ द्वारा यूरोप के सब से ऊँचे आल्प्स नामक पर्वत को पार किया। एक फ्रांसीसी उड़ने वाले ने इस वायुयान द्वारा १३,००० मील की यात्रा की। जर्मनी वालों ने एक जहाज़ ऐसा बनाया है, जिसका आकार बिलकुल चिड़िया के समान है उसका नाम भी चील रक्खा है।

पहली बार १६०५ ई० में राइट बन्धु अपने बनाये दुपंखी वायु-पोत पर उड़े थे। उस समय उनकी बड़ी प्रशंसा हुई और उन्हें कितने ही बड़े-बड़े पारितोषिक मिले। फिर एक-पंखी वायुयान बनाये गये, ये भी आकाश में बड़ी सफलता के साथ उड़े। इसके बाद तो हवाई जहाज़ों की बहुत उन्नति हुई, भांति-भांति के जहाज़ तैयार होने और तरह-तरह के नमूने दिखाई देने लगे। अब तो ऐसा कोई देश नहीं जहाँ वायुयान आकाश मण्डल में न मँडलाते फिरते हों।

संसार के प्रत्येक भाग में वायुयान-क्लब स्थापित हो चुके है, सभी देशों में हवाई जहाज़ों के उतरने-चढ़ने के स्टेशन मौजूद है, जो 'ऐरोड्रोम' के नाम से प्रसिद्ध हैं। अब तक जितने वायुयान बने है, उनमें ३० मील से लेकर १५० मील तक फ़ी घंटे उड़ने वाले जहाज़ हैं। इँगलैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, इटली, अमरीका आदि देशों मे ऐरोड्रोमों की संख्या बहुत ज़्यादा है। कई देशों में उड़ना सीखने की शिक्षा भी दी जाती है। अब तो कितने ही देशों की यात्रा नियमित रूप से हवाई जहाज़ों द्वारा

की जा सकती है। इंगलैण्ड से भारत का मार्ग केवल ६, ७ दिन में पूरा हो जाता है। क्या यह कम आश्चर्य की बात है? कहीं-कहीं तो डाक भी हवाई जहाजो द्वारा भेजी जाने लगी है।

वायुयान वायु में उसी सिद्धांत से उड़ता है, जिस प्रकार पक्षी आकाश में उड़ते है। इसमें जो इंजन प्रयुक्त होता है, वह पैट्रोल का होता है। ३५ से ४०० अश्वबल तक के इंजन काम में आते है। बड़े-बड़े जहाजों में आवश्यकतानुसार एक से अधिक इंजन भी लगे रहते है। इंजन द्वारा यह जहाज दाएँ-बाएँ उसी प्रकार घुमाए जाते हैं, जैसे पानी पर चलने वाले जहाज घुमाये जा सकते है। इसी प्रकार वायुयान इच्छानुसार नीचे और ऊपर उठाया जा सकता है। कुछ वायुयान लचकदार होते हैं, कुछ दृढ़ और कुछ अर्द्ध दृढ़। जिस वायुयान मे एक तल होता है उसे एकपंखी और दो तल वाले को दुपंखी वायुयान कहते हैं। तीन तल के तिपंखी वायुपोत भी बनाये गये थे, परन्तु इनका प्रचार बहुत कम है।

अब तक हवाई जहाज १३ हजार से ३६ हजार फुट तक हवा में ऊँचे उठ सके है। एक बार जेप्लिन नामक जहाज म बैठकर सौ आदमियों ने जर्मनी से अमरीका तक यात्रा की थी। जेप्लिन के उड़ाने में प्रचुर धन और कितने ही आदमियों की आवश्यकता होती है। परन्तु अन्य जहाजों को दो-तीन आदमी ही बड़ी आसानी से उड़ा सकते है। आज संसार मे दो-तीन लाख मील तक वायुयान की लाइनें बन गई हैं जिनमें डाक

आती-जाती है। फिर तारीफ़ यह है कि हवा में हज़ारों मील उड़ चुकने पर भी निर्दिष्ट स्थान तक पहुँचने में एक मिनिट का भी अन्तर नहीं पड़ता अर्थात् जिस समय जहाँ डाक पहुँचनी चाहिए ठीक उसी समय वह वहाँ पहुँच जाती है। प्रारम्भ में हवाई जहाज़ों में बहुत थोड़े यानी दो-चार आदमी ही बैठ सकते थे। परन्तु अब तो वे ४० यात्री, उनका सामान और डाक के थैले लेकर हज़ारों मील उड़ते चले जाते हैं। पहले लकड़ी और तार के वायुयान बनते थे, परन्तु अब लोहे के कई टन वज़न के जहाज़ बनने लगे हैं।

हवाई जहाज़ों के उतरने के लिए लम्बे-चौड़े मैदान की आवश्यकता होती है। पहले वे ज़मीन पर ही उतर सकते थे, और नीचे लगे हुए पहियों पर टिक जाते थे, परन्तु जब से उनके नीचे नावें लगाई गई हैं, तब से वे जल-थल कहीं भी उतारे जा सकते है। चौड़ी नदी हो तो उसमें भी वे उतर कर फिर उड़ सकते हैं।

जो लोग हवाई जहाज़ों में यात्रा करते हैं, उन्हें किसी प्रकार की असुविधा नहीं होती। शौच जाने, नहाने, खाने, सोने, मनोरंजन करने आदि के लिए, उनमें अलग-अलग स्थान बने रहते है। हवाई जहाज़ में बैठकर जिस समय मनुष्य आकाश में यात्रा करता होगा, उस समय उसे संसार, निश्चय ही, एक क्षुद्रसी वस्तु के समान दिखाई देता होगा। अगर वायुयानों की इसी तरह उन्नति होती गई तो वह दिन दूर नहीं जब मोटर लारियाँ और ट्रेनों की तरह उनका सब जगह

उपयोग होने लगेगा और प्रत्येक व्यक्ति उनके द्वारा यात्रा करने मे गौरव समझेगा। हवाई जहाजों में पर्याप्त उन्नति हो चुकी है, फिर भी उनमे बैठने में कुछ खतरा अवश्य है।

---

## टाइप रायटर

टाइप रायटर की मशीन भी बड़ी उपयोगी है, इसका प्रचार दिनों-दिन बढ़ता जा रहा है। कदाचित् ही कोई ऐसा दफ्तर होगा जिसमें टाइप रायटर की मशीन खट-खट न करती हो। वकील-बैरिस्टर, व्यापारी, स्कूल, कालेज सब ही टाइप रायटर से रात-दिन लाभ उठाते रहते हैं। टाइप रायटर के अक्षरों को खटखटाकर जरा देर में पृष्ठ के पृष्ठ छाप लीजिए। जितनी जल्दी इस मशीन द्वारा छपाई होती है, उतनी शीघ्रता से आदमी लिख नहीं सकता। फिर कारबन कागज की सहायता से एक ही पृष्ठ की अनेक प्रतियाँ भी साथ ही साथ होती जाती है। टाइप रायटर के कारण जहाँ लिखने में जल्दी होती है, वहाँ अक्षर भी बड़े सुन्दर और सुपाठ्य बनते हैं। अँग्रेजी का टाइप रायटर तो पहले ही से था, परन्तु अब तो हिन्दी, उर्दू, गुजराती आदि की भी मशीनें बन गई हैं। यदि सावधानी से बर्ती जाय तो एक मशीन बरसों काम दे सकती है, कभी-कभी मरम्मत करने की आवश्यकता अवश्य होती है।

यों तो टाइप रायटर की मशीन बनाने के लिए अनेक लोगों ने उद्योग किया, परन्तु इसका मुख्य श्रेय क्रिस्टोफ़र शोल्स नामक एक व्यक्ति को है। यह महाशय किसी प्रेस में नौकर थे, और इन्हें छापने की बातों में बड़ी रुचि थी। एक दिन शोल्स ने देखा कि हाथ के बने ठप्पों को ठोक-ठोक कर कोरी
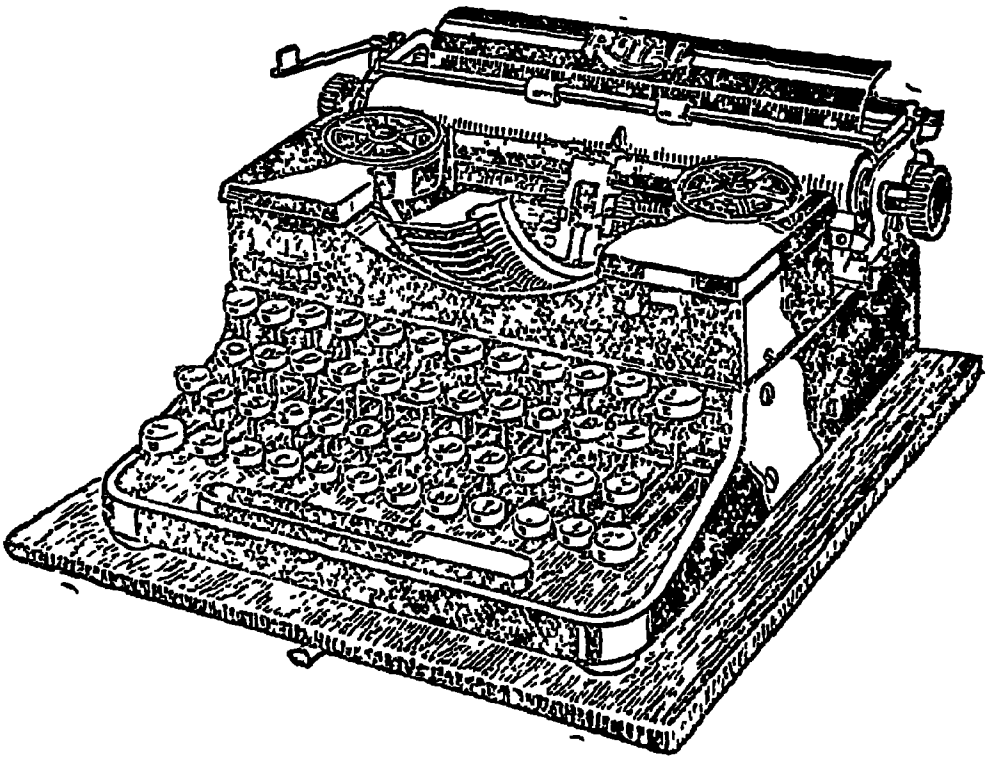
टाइप रायटर

कापियों पर पृष्ठ संख्या डाली जा रही है, इससे उसे बड़ा आश्चर्य हुआ और उसने सोचा कि क्या ऐसी कोई मशीन नहीं हो सकती जो इस काम को कर सके। वह इस बात को सोचता रहा और अन्त में उसने नंबर डालने की मशीन तैयार

कर ली। १८६६ ई० में शोल्स ने उसे पेटेण्ट भी करा लिया। यह "नम्बरिंग मशीन" ही टाइप रायटर की जननी है। उसे बना कर शोल्स ने विचार किया कि यही क्यों; ऐसी भी मशीन तैयार होनी चाहिए, जो अक्षर और अङ्क दोनों सुगमता पूर्वक छाप सके।

उपर्युक्त मशीन बनाने के विचार ने शोल्स के हृदय मे घर कर लिया और वह इसी धुन में लग गया। थोड़े दिन के उद्योग से उसने एक मशीन तैयार कर ली परन्तु उसमे कितने ही दोष थे, जो धीरे-धीरे दूर कर दिये गये। शोल्स को इस काम में अपने कई मित्रों की भी सहायता लेनी पड़ी। अन्त में १८६८ ई० मे टाइप रायटर पेटेण्ट कराया गया। इस टाइप रायटर मे सब अक्षर बड़े (Capital) थे। फिर क्या था, उससे चिट्ठियाँ छपने लगीं और वह यत्र-तत्र भेजी जाने लगी। जो कोई इन चिट्ठियो को पढ़ता वही आश्चर्य-चकित हो कहने लगता—'ओह यह तो बड़ी अच्छी छपाई है। चिट्ठी छापने की ऐसी मशीन तो बड़ी ही सुन्दर और उपयोगी होगी। निदान टाइप रायटर को अपनी सूचना देने मे किसी की सहायता नहीं लेनी पड़ी। इसने अपना विज्ञापन स्वयं बड़ी ख़ूबी के साथ किया। टाइप रायटर मे जो त्रुटियाँ रह गईं थी वे भी डेन्समोर नामक सज्जन के उद्योग और परामर्श द्वारा दूर हो गईं।

अन्त को इस मशीन के बनाने और बेचने का अधिकार न्यूयार्क की प्रसिद्ध कम्पनी रेमिगटन एण्ड सन्स को दिया,

जिसने कि मशीन तैयार करने का भी स्वत्व प्राप्त कर रक्खा है। रेमिंगटन कम्पनी में बड़े-बड़े अच्छे दस्तकार काम करते थे, अतएव उसने बड़े उत्साह से यह काम अपने हाथ में लिया। इतना ही नहीं, कम्पनी ने शोल्स से टाइप रायटर का स्वत्व खरीद कर उसका नाम 'रेमिंगटन टाइप रायटर' रख दिया। शोल्स को उसके हिस्से के बारह हज़ार डालर मिले और उसके साथी डेन्समोर को रायल्टी मे कई लाख डालर प्राप्त हुए। इसके बाद शोल्स ने दूसरी तरह की मशीन बनाई, और भी लोगों ने नई-नई तरह के टाइप रायटर तैयार किये परन्तु रेमिंगटन मशीन की बराबरी कोई न कर सका।

अब तो कितनी ही तरह के टाइप रायटर प्रचलित हैं। पोर्टेबिल टाइप रायटर हलका होता है, उसे चाहे जहाँ आसानी से लेजा सकते हैं। नीरव ( Soundless ) टाइप रायटर द्वारा छापते समय किसी प्रकार का शब्द नहीं होता। एक टाइप रायटर ऐसा भी बना है, जिस पर अंधे लोग भी काम कर सकते हैं, अँधों की मशीन के अक्षर कुछ उभरे हुए होते हैं, जिससे वे उन्हें सहज ही में टटोल कर पहचान सकते हैं। बिजिली के टाइप रायटर भी बन गये हैं।

टाइप रायटर की मशीन से छापना कुछ विशेष कठिन नहीं है। कोई भी आदमी, थोड़े परिश्रम से इस उपयोगी काम को सीख सकता है। इसका काम सिखाने के लिए अनेक स्कूल खुले हुए हैं, कालेजों में भी इसकी शिक्षा का प्रबन्ध है। प्रारम्भ में मशीन पर काम करनेवाले सीधे हाथ की केवल

दो-तीन उँगलियाँ इस्तैमाल करते थे। परन्तु अब 'टच सिस्टम' की नवीन पद्धति के अनुसार दोनो हाथो की सब उँगलियाँ तथा अँगूठो को भी काम करना पड़ता है। इस मशीन द्वारा छपाई का काम भी बड़ी तेज़ी के साथ होता है। एक-एक मिनट में दो-दो सौ अक्षर तक इस मशीन द्वारा छापे जा चुके हैं। विलायत के दफ्तरों मे टाइप रायटर पर अधिकतर स्त्रियाँ काम करती हैं। उनके लिए यह एक नया व्यवसाय निकल आया है, क्योंकि इसमे विशेष शारीरिक श्रम की आवश्यकता नही होती, कुर्सी पर बैठकर सामने मेज़ पर रक्खी मशीन के अक्षरों को दबाइए और चिट्ठी, पत्री, कार्ड लिफ़ाफ़ा लेखादि जो इच्छा हो, छाप लीजिये। पढ़े-लिखे लोगों के लिए तो मशीन बड़ी ही उपयोगी सिद्ध हुई है। व्यापार सम्बन्धी कामों में भी उससे खूब सहायता ली जाती है। अँगरेज़ी की तरह हिन्दी के अक्षर भी बहुत सुन्दर छपते हैं। ज्यों-ज्यों मशीन सस्ती और सुलभ होती जाती हैं, त्यों-त्यो उनका प्रचार भी बढ़ता जाता है।

# विषैली गैसें

जहाँ विज्ञान द्वारा संसार के लिए उपयोगी और अनुकूल आविष्कार हुए है, वहाँ संहारक विधि पैदा करने में भी उसने कमी नहीं की। यूरोपीय महाभारत में जन-संहार के लिए कैसे-कैसे अपूर्व आविष्कार हुए, यह कोई छिपी हुई बात नही है। मिनटों में सफाया करने वाली मशीनगनें, आग बरसाने वाले हवाई जहाज और बड़े-बड़े भारी गोले फैंकने वाली तोपें इसी युद्ध में आविष्कृत हुई थीं। इस भयंकर युद्ध के समय सबसे अधिक संहारक आविष्कार विषैली गैसों का हुआ। विष-युक्त गैसों ने युद्ध काल में क्रान्ति पैदा कर सिद्ध कर दिया है कि विज्ञान के बल-बूते पर एक अत्यन्त निर्बल आदमी भी बड़े से बड़े सबल शत्रु का सर्वनाश कर सकता है।

यों तो विषाक्त गैसों का प्रयोग बहुत पुराना है, परन्तु आधुनिक युग में उसका प्रारम्भ १६१५ ई० से होता है। उस समय जर्मन-सेना ने फ्रेंच-सेना पर क्लोरियन नामक गैस से आक्रमण किया था। फिर तो कितनी ही तरह की गैस निकाली गईं। इन गैसों द्वारा जितने आदमी जन्म-भर के लिये अंग-भंग और अपाहिज हुए, उतने मारे नहीं गये। परन्तु तोपों की मार से गैसों की मार अधिक प्रभावशालिनी सिद्ध हुई, क्योंकि तोप के गोलों से तो ज्यों-त्यों कर आदमी प्राण बचा भी सकता है, परन्तु गैस के असर से अछूता रहना असम्भव है।

गैसों के कई भेद हैं कुछ तो ऐसी गैस हैं, जो कष्टदायक न होने पर भी प्राण-घातक हैं, कुछ गैस फेंफड़े की झिल्लियों को नष्ट कर वायु के आने-जाने की नालियों को रोक देती हैं, जिससे आदमी दम घुट कर मर जाता है। कुछ गैसें, वायु-वाहक धमनियों पर आघात कर उन्हे नष्ट कर डालती है, जिससे फेंफड़ों मे वायु का सञ्चार नही होता। इस प्रयोग से मनुष्य तुरन्त मर जाता है, और कदाचित् जीवित भी रह गया, तो उसे अनेक मारक रोग लग जाते हैं। कुछ विषाक्त गैस ऐसी हैं, जो केवल नाक और गले पर ही आघात करती हैं। इनके प्रभाव से भयंकर दर्द, सिर दर्द, छाती का भारी होना, छींकना, आँखों के सामने अँधेरा, मूर्छा और शारीरिक दुर्बलता आदि रोग बुरी तरह घेर लेते हैं।

अश्रुत्पादक गैस आँखों पर आघात कर कुछ काल के लिए मनुष्य को अंधा बना देती है। यद्यपि वह मनुष्य को मार नहीं डालती, तथापि उसे मरने से बुरी हालत में पहुँचा देती हैं। जब तक इन गैसों का हवा मे कुछ भी असर रहता है, तब-तक मनुष्य के लिए देखना तो प्रायः असम्भव ही हो जाता है। इस गैस के थोड़े-से भी असर से, या तो सैनिक रण-क्षेत्र से भाग जाता है, अथवा अंधा होकर भूमि पर गिर पड़ता है। शरीर पर छाला डालने वाली गैसें भी भयानक होती है। इनसे शरीर पर बड़े दुःखदायी घाव हो जाते है। ये जिस अंग से छू जाती हैं उसी पर भयंकर छाले पड़ जाते हैं, और असह्य पीड़ा होने लगती है।

युद्ध मे गैसो से बचने के लिए, सैनिक लोग नकली चेहरे

चढ़ा लेते हैं, और जब तक वायु-मंडल में गैसों का प्रभाव रहता है तब तक उन्हें नहीं उतारते। ऐसे समय कुछ भ्रान्ति उत्पादक गैसें छोड़ी जाती हैं, जिनसे वायु-मण्डल में विषैली गैसों का ज्ञान ही न हो, अथवा इन भ्रान्ति उत्पादक गैसों ही को विषैली गैस समझ कर सिपाही चेहरे न उतारें। जब चेहरे पहने हुए बहुत देर हो जाती है, तो सैनिकों को बड़ा कष्ट होता है। फ़ासजीन नामक गैस का प्रभाव हृदय पर धीरे-धीरे होता है, और कभी-कभी ऐसा भी भ्रम होने लगता है कि अब इसका कोई प्रभाव नहीं रहा, परन्तु अन्त में यह गैस मनुष्य को मार डालती है।

इसी प्रकार की और भी कितनी गैसें हैं, जिनके कारण मनुष्य को बहुत व्यथित होना पड़ता है। जल्दी फैलाने के लिए गैसें वाष्पशील बनाई जाती हैं। परन्तु वे इतनी वाष्पशील नहीं होतीं कि तुरन्त उड़ जायँ और कुछ देर ठहर न सकें।

लड़ाई में ये गैसें हवाई जहाज़ या तोपों से फेंकी जाती हैं। इनके प्रभाव से बच सकना बड़ा कठिन काम है। विज्ञान की बलिहारी है! एक ओर तो वह लोगों को सुमधुर गाने सुनाता और बड़े-बड़े लाभ पहुँचाता है, परन्तु दूसरी तरफ बात की बात में सैकड़ों-सहस्रों सैनिकों को यमधाम पहुँचा देता है। कुछ भी हो, गैसों का प्रयोग करना बड़ी बुरी संहारक-विधि है, इसके कारण सैनिक लोग जीवन-भर के लिए अन्धे, अपाहिज और दुर्दशा-ग्रस्त हो जाते हैं। गैसों से जिनका प्राणान्त हो जाता है, उन बेचारों के लिए तो कहा ही क्या जाय?

---

# सीने की मशीन

विज्ञान की सहायता से जितने आविष्कार हुए हैं, उनमें सीने की मशीन भी अपना उचित स्थान रखती है। इस मशीन के निकलने से पहले स्त्री-पुरुष हाथ से सियाँ करते थे, और कई-कई दिनों के कठिन परिश्रम के बाद एक कपड़ा सिलकर तैयार होता था। इस प्रकार सीने का काम करने वालों को जहाँ बहुत बड़ी थकावट हो जाती थी वहाँ उन्हें आँखों से भी कम दिखाई देने लगता था। परन्तु सीने की मशीन के आविष्कार से वे सारी कठिनाइयाँ दूर हो गईं, और जो कपड़े कई-कई दिनों मे सिल पाते थे वे घंटों मे तैयार होने लगे। फिर सिलाई बड़ी साफ़ और सुथरी। सीने की मशीन की उपयोगिता के कारण उसकी लोकप्रियता उत्तरोत्तर बढ़ रही है। शहरों की कौन कहे, गाँवो तक मे मशीन खट-खट करती दिखाई देती हैं। सम्पन्न गृहस्थों के यहाँ भी इसका बहुत प्रचार बढ़ गया है। धीरे-धीरे हाथ से कपड़े सीने की प्रथा ही बन्द होती जाती है, और बहुत कुछ तो हो भी चुकी। जो लोग हाथ से कपड़े सींकर अपनी गुज़र करते थे, उन्होंने भी मशीन खरीद लीं, और वे भी उसी से काम लेने लगे। कपड़ा ही नहीं चमड़ा, टाट, बोरी आदि भी मशीनों ही से सीए जाते हैं।

सीने की मशीन का आविष्कार कब और किसने किया यह कथा बड़ी मनोरंजक है। इस मशीन का आविष्कारक

एलिअस होव ( Elias Howe ) नामक एक साधारण व्यक्ति कारखाने में नौकर था। होव की आमदनी इतनी कम थी कि उसके बाल-बच्चों का निर्वाह भी बड़ी कठिनाई से होता था। होव की स्त्री बड़ी महनतिन थी। वह रात-दिन अपने हाथ से कपड़े सींकर, घर के खर्च के लिए कुछ पैसे कमा लेती थी। रात को जब होव नौकरी से घर आता तो वह अपनी स्त्री को

सीने की मशीन

सिलाई करते पाता। उस समय उसे यह ख़याल होता कि कोई ऐसी मशीन निकाली जाय जो चटपट कपड़े सींकर सीने-वालों की कठिनाई को दूर कर दे।

यही सोचकर होव सीने की मशीन की उधेड़-बुन में लग गया। नौकरी से जितना अवकाश मिलता उसे वह इसी काम

में लगाता। अन्त में मशीन का ढाँचा समझ में आया और वह उसके सम्बन्ध मे तरह-तरह के परीक्षण करने लगा। पहले उसने ऐसी सुई इस्तैमाल की, जो दोनों ओर नुकीली थी और जिसके बीचों बीच डोरा पिरोने के लिए सूराख था। इसमे डोरा बहुत मोटा और मजबूत डालना पड़ता था, नहीं तो उसके टूट जाने का भय था। फिर उसने दो धागे व्यवहार में लाने की विधि सोची। एक धागा मुड़ी हुई सुई मे पड़ा रहता था और दूसरा शटल मे। होव १८४४ ई० मे सीने की मशीन निकालने में समर्थ हुआ; परन्तु अब यह कठिन समस्या उपस्थित हुई कि सर्वसाधारण को ऐसी मशीन की सूचना कैसे दी जाय, क्योंकि होव के पास धन नही था, जिसे वह विज्ञापन मे व्यय कर सकता।

विज्ञापन मे रुपया लगाना तो अलग रहा, होव के पास मशीन तैयार करने के लिए भी टके न थे, परन्तु फिर भी उसे अपने इस आविष्कार पर पूरा विश्वास था और वह समझता था कि ज्योंही लोग इस मशीन को काम करते देखेंगे, त्योंही उसे अपनाना शुरू कर देंगे और फिर मैं मालामाल हो जाऊँगा। अन्त में कैम्ब्रिज के एक धनी ने होव को आर्थिक सहायता देकर निश्चिन्त कर दिया और भविष्य मे भी सहायता देने का वचन दिया। अब क्या था होव के रहन-सहन तथा खान-पान की उचित व्यवस्था हो गई और उसने बड़े परिश्रम से एक मशीन तैयार कर डाली। हाथ से सीने वालों के साथ इस मशीन की प्रतियोगिता हुई, परन्तु उसके मुकाबिले

में सब हार गये। दर्जियों ने इस मशीन का बड़ा विरोध किया, क्योंकि वे समझते थे कि इसके प्रचार से उनका रोजगार चौपट हो जायगा। इधर उस मित्र ने भी आर्थिक सहायता देने से इन्कार कर दिया, अब होव को फिर प्रतिकूल परिस्थिति का सामना करना पड़ा।

इसके बाद होव ने अपनी मशीन इंगलैंड भेजी वहाँ एक आदमी ने २५० पौंड देकर उसे ख़रीद लिया। इससे होव को आशा हुई कि शायद इँगलैण्ड में उसका काम चल पड़े, अतः वहीं चला गया। परन्तु इँगलैंड में तो उसको बड़ी ही मुसीबत का सामना करना पड़ा, उसके भूखों मरने तक की नौबत आ गई! हार कर बेचारा इँगलैंड से अमरीका चला गया। इसी बीच मे उसे मालूम हुआ कि कोई आदमी उसकी मशीन की नक़ल कर धड़ा-धड़ रुपये कमा रहा है। इसके लिए होव को मुक़दमा लड़ना पड़ा, जिसमें उसकी जीत हुई।

अन्त मे लोगों ने सीने की मशीनों की उपयोगिता और आवश्यकता अनुभव की और उनकी माँग उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। होव के दिन फिरे और उसकी निराशा दूर हुई। फिर तो होव को मशीनों की बिक्री से प्रति वर्ष दो सौ हजार डालर तक आय होने लगी। बड़ी-बड़ी प्रदर्शिनियों में उसे प्रमाण-पत्र तथा पदक मिले। अब क्या था, होव की दरिद्रता दूर हो गई और उसकी गणना धनियों में होने लगी। होव के जीवन-काल ही में सीने की मशीन का इतना प्रचार हुआ कि उसे यश और धन दोनों प्रचुर मात्रा में प्राप्त हुए।

अब तो कितने ही नमूनों की मशीनें बाजार में मिलती हैं। मशीनें तैयार करने के लिए मीलों लम्बे-चौड़े कारखाने खुले हुए हैं। इनके व्यापार ने, संसार मे बड़ा रूप धारण कर लिया है। ऐसा कौन है, जिसके उपयोग मे यह मशीन नहीं आती। सचमुच, सिलाई की मशीन ने एक भारी कमी दूर करदी और लोगों को बड़ा लाभ पहुँचाया। इस मशीन पर काम करना कुछ विशेष कठिन नहीं है, थोड़े से अभ्यास द्वारा कोई भी कपड़े सीं सकता है।

---

## फ़ोटोग्राफ़ी और ब्लौक बनाना

एक समय वह था जब चित्र हाथ से बनाये जाया करते थे परन्तु जब से फ़ोटो-केमरा का आविष्कार हुआ है, तब से अधिकतर चित्र इसी के द्वारा लिये जाते हैं। फ़ोटो-ग्राफी का आविष्कार हुए लगभग १०० वर्ष हुए होंगे, परन्तु इतने दिनो में इसने ख़ूब उन्नति करली है।

फोटोग्राफी का शब्दार्थ है—प्रकाश द्वारा किसी लेख या चित्र को अङ्कित करना। हिन्दी मे इसे छाया-चित्र भी कहते हैं। बड़े परीक्षण और प्रयोगों के पश्चात् सर्व-प्रथम १८२४ ई० में फ़ोटोग्राफी विधि द्वारा एक मनुष्य का चित्र लिया गया। १८४७ ई० मे क़ाँच के प्लेटों और १८८५ ई० मे फिल्मो का आविष्कार हुआ। फ़ोटोग्राफी का आविष्कार फ्रान्स के

वैज्ञानिकों द्वारा हुआ। उन्होंने बड़े परिश्रमपूर्वक सूर्य के प्रकाश द्वारा चित्र खींचने की इस विद्या को निकाल पाया। अब तो ऐसे-ऐसे फ़ोटो यन्त्र बन गये हैं, जो बात की बात में, चाहे जिसकी चाहे जब तस्वीर ले सकते हैं। इसके बाद भी फोटोग्राफ़ी के लिए बहुत उद्योग होता रहा। कई वैज्ञानिक
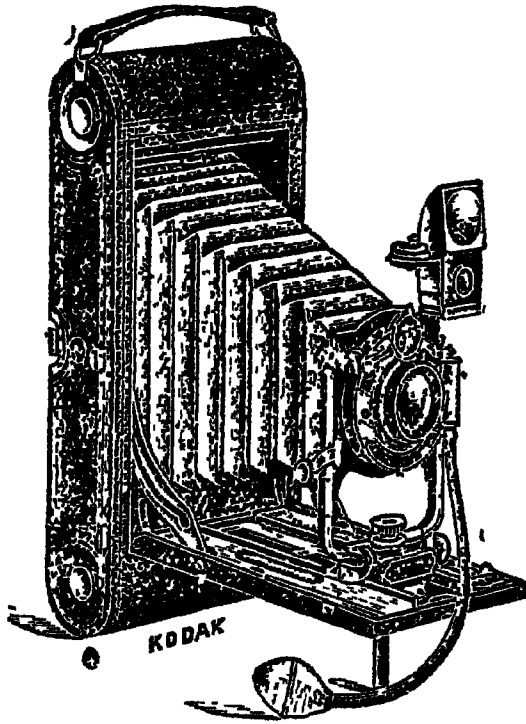
केमरा

इस सम्बन्ध में काफ़ी खोज कर चुके थे; परन्तु निगेटिव प्लेट के आविष्कार का श्रेय इँगलैंड निवासी मि० फ़ॉक्स हालवट को है। इस निगेटिव की सहायता से इच्छानुसार चाहे जितने फ़ोटो-चित्र तैयार किये जा सकते हैं। निगेटिव प्रथा निकलने से पूर्व एक समय में एक ही चित्र तैयार हो सकता था।

दूसरा चित्र तैयार करने के लिए, दूसरी बार फ़ोटो लेने की आवश्यकता होती थी। इससे अनुमान किया जा सकता है कि निगेटिव पद्धति कितनी उपयोगी सिद्ध हुई।

ज्यों-ज्यों फ़ोटोग्राफ़ी की उन्नति होती जाती है, त्यों-त्यों केमरे भी उत्कृष्ट और बहुमूल्य बनते जाते हैं। छोटी-बड़ी सभी क़ीमत के केमरे बाज़ार में मिलते हैं। इस कला मे यहाँ तक उन्नति हुई कि उड़ती हुई चिड़िया या बन्दूक से निकलती हुई गोली के चित्र क्षणमात्र मे लिए जा सकते हैं। फ़ोटो लेने के लिए ऐसे यन्त्र भी बनाये गये हैं, जिनके द्वारा स्वाभाविक प्रकाश के प्रभाव में भी चित्र लिये जा सकते हैं। चित्र लेने के लिए इन केमरों के साथ आवश्यक प्रकाश की व्यवस्था होती है। केमरा द्वारा चित्र खींचने वाले फ़ोटोग्राफ़र तो प्रायः सभी छोटे-बड़े शहरों मे मिलते हैं। अतः अब यह कोई ऐसी बात नहीं रही जो आश्चर्यजनक समझी जाय। कोई भी विद्यार्थी फ़ोटोग्राफ़र के पास जाकर इस कला का थोड़ा-बहुत ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

आजकल पत्र-पत्रिकाओं तथा पुस्तकों मे बहुत-से चित्र छपते रहते है, परन्तु प्रायः लोग यह नहीं जानते कि इस प्रकार के चित्र छापने मे किस विधि से काम लिया जाता है। आज कोई घटना होती है, और कल उसका चित्र समाचारपत्रों में निकल जाता है। विलायत मे तो इस कला में यहाँ तक उन्नति हुई कि इधर कोई भोज हुआ है और उधर उसका चित्र

छप कर समाचारपत्रों में प्रकाशित हो गया। अर्थात् इस सारी क्रिया में एक घण्टे से अधिक समय नहीं लगा। इस चित्र-कला के सम्बन्ध में यहाँ दो-चार बातें लिख देना आवश्यक समझते हैं। कुछ लोगों का ख़याल है कि प्रेस में फ़ोटो दे देने से उसकी हज़ारों कापियाँ छप जाती हैं, परन्तु वास्तव में यह बात नहीं है। पहले फ़ोटो का ब्लाक बनवाना पड़ता है, और फिर छापने की विशेष मशीन द्वारा चित्र तैयार किये जाते हैं। ब्लाकों का निर्माण रसायनिक क्रिया द्वारा ताँबे और जस्ते पर होता है। ब्लाक दो तरह के बनाये जाते हैं। रेखा-विधि और हाफ़टोन। इन्हीं दो तरीकों से रंग-बिरंगे चित्र तैयार किये जा सकते हैं। 'वुडकट' ब्लाक लकड़ी पर खोद कर बनाये जाते हैं। रेखा-विधि द्वारा ऐसे ब्लाक तैयार किये जा सकते हैं, जिनमें केवल रेखा ही हों। इस विधि में प्रायः किसी प्रकार के रंग नहीं दिये जा सकते। इन चित्रों की रचना गाढ़ी काली स्याही में परिमित रेखाओं द्वारा होती है। इसमें टूटी या हलकी या न्यूनाधिक रंग की रेखायें काम नहीं देतीं। लकड़ी के ब्लाकों में उलटी खुदाई होने के कारण सुन्दरता नहीं आती, और वे स्थाई भी नहीं होते। लीथो के तरीके पर इस प्रकार के ब्लाकों को रंगीन भी बनाया जा सकता है। जिस प्रकार लाइन ब्लाक काली तथा सफ़ेद रेखाओं से तैयार किये जाते है, उसी प्रकार हाफ़टोन ब्लाक साधारण छाया-चित्र (फ़ोटो) अथवा हाथ के बने चित्रों द्वारा बनाये जाते हैं। हाफ़टोन ब्लाक ताँबे पर ही अच्छे और मजबूत बनते हैं।

तेजाब द्वारा ब्लाक की खुदाई करते समय, चित्र के शेड तथा उच्चतम प्रकाश को ठीक रखने के लिए कई बार धीरे-धीरे खुदाई की जाती है। हाफ़टोन ब्लाक बनाने के लिए मूल चित्र रंगीन पीलापन लिए हुए, नीले, हरे तथा लाल रंग का न होना चाहिये। धुँधले चित्रों से भी अच्छे ब्लाक तैयार नहीं हो सकते। रंगीन चित्र छापने के लिए मुख्यकर लाल, पीला तथा नीला रंग काम मे लाया जाता है। इन्हीं तीन रंगों की मिलावट से और सब रंग बन जाते हैं। रंगीन ब्लाक बनाते समय रंगों का विशेष ध्यान रखना पड़ता है। तिरंगे चित्र छापने के लिए एक ही चित्र के तीन ब्लाक बनाये जाते हैं। तिरंगे चित्रों की उत्तमता, स्याही, छपाई, काग़ज़ और ब्लाक पर निर्भर होती है। रंगीन चित्रों पर सुनहरी या रूपहली रंग भी छापा जाता है। इसके लिये लाइन ब्लाक की आवश्यकता होती है।

चित्रों की छपाई के सम्बन्ध में ऊपर मोटी-मोटी बातें बताई गई हैं, इस विषय का विशेष ज्ञान तो उसका नियमपूर्वक अध्ययन करने ही से हो सकता है। इस प्रकार किसी चित्र का ब्लाक बन जाने पर फिर उसकी सहस्रों प्रतियाँ छापी जा सकती हैं, साथ ही ब्लाक के रूप मे वह चित्र चिरस्थायी भी हो जाता है। हर्ष की बात है कि पत्र-पत्रिकाओं की उन्नति के साथ भारत मे ब्लाक बनाने की क्रिया भी उन्नत होती जाती है।

---

# सिनेमा या बायस्कोप

महेश ने अपने जीवन में पहली बार ही सिनेमा देखा था, वह उसे देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ और घर आकर पूछने लगा—'पिताजी, सिनेमा कब से प्रचलित हुए? इनका आविष्कारक कौन है?' महेश की ऐसी जिज्ञासा देखकर उसके पिता पं० श्रीदत्त ने कहा—बेटा, अब तो बहुत देर हो गई है, सो जाओ, कल किसी समय तुम्हें सिनेमा सम्बन्धी बातें बताई जायगीं। महेश को चैन कहाँ! उसकी आँखों में रात-भर सिनेमा के दृश्य झूमते रहे। प्रातःकाल होते ही, आवश्यक कार्यों से निवृत्त होकर उसने फिर रात के प्रश्नों को दुहराया। पिताजी अपने पुत्र का आग्रह देखकर कहने लगे—

सब से पहले १८३३ ई० में डवल्फजी हामर ने 'थोमाट्रोप' ( Thonmatrope ) नामक यन्त्र बनाया। इस यन्त्र के एक चक्र पर घोड़े आदि के चित्र बने हुए थे। जब यह चक्र घुमाया जाता था तो, दौड़ते हुए हाथी-घोड़े बड़े सुहावने लगते थे। धीरे-धीरे इस सम्बन्ध में और भी उन्नति हुई। इस विचार को लेकर अन्य कई वैज्ञानिकों ने भी अपनी गति-मति के अनुसार ऐसी मशीन तैयार की। उन्हें थोड़ी-बहुत सफलता भी प्राप्त हुई।

लन्दन के फ्रीजग्रीन नामक फ़ोटोग्राफ़र का भी इस आविष्कार में अच्छा हाथ रहा। १८८५ ई० में इसने लन्दन में काँच के टुकड़ों पर अंकित चित्रों का प्रदर्शन किया, जिसे देख कर

दर्शक के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। परन्तु काँच पर अङ्कित चित्र इस कार्य के लिये अधिक उपयोगी सिद्ध न हुए, अतः फिर सेल्यूलाइड फिल्मों का उपयोग करना पड़ा। अन्त में १८६३ ई० में एडीसन ने भी ऐसी ही मशीन बनाई और शिकागो में इसका प्रदर्शन किया जिसे देख कर लोग दंग हो गये और सिनेमा की धूम मच गई। फिर तो लोगों की यहाँ तक धारणा होगई कि जिस शहर में सिनेमा घर नहीं वह सभ्य ही नहीं। आज देखिये छोटे-बड़े सभी नगरों मे सिनेमा-घर बने हुये हैं।

सिनेमा घर में जाकर रात को लोग सिनेमा देखते हैं, और वहाँ चित्र-पट पर भाँति-भाँति की चलती फिरती तस्वीरें अवलोकन कर प्रसन्न होते हुये घर लौटते हैं। सिनेमा के चलते-फिरते दौड़ते-कूदते बोलते-चालते चित्रो से मनोरंजन ही नहीं होता; उनसे शिक्षा भी खूब मिलती है। देश विदेशो के बन-पर्वत नदी-नाले, झील झरने, सरोवर आदि के दृश्य ज्यों के त्यों दिखाई देने लगते हैं। प्रत्येक जाति और देश के निवासी स्त्री पुरुषों के आकार-प्रकार वेष भूषा और रीति रिवाजों का प्रत्यक्ष परिचय कराने मे सिनेमा बहुत नाम पा चुका है।

पहले केवल मूक सिनेमा देख कर ही दर्शक अपना मनो-रंजन किया करते थे, परन्तु विज्ञान की बदौलत जब से चित्र बोलने-चालने लगे हैं, तब से तो उनकी उपयोगिता और लोक-प्रियता बहुत कुछ बढ़ गई है। सचमुच, सिनेमा ने नाटको का मान-मर्दन कर दिया। नाटकों में जाकर दर्शकों को रात के

दो-दो तीन-तीन बजे तक आँखें फोड़नी पड़ती थीं, परन्तु सिनेमा के देखने में दो-ढाई घंटे से अधिक समय नहीं लगता। इसीलिए एक-एक सिनेमाघर में प्रति दिन दो-दो और कभी-कभी तो तीन-तीन प्रदर्शन होते हैं। दिन में भी अँधेरा कर के सिनेमा दिखाया जाता है।

सिनेमा का विस्तार यहाँ तक हुआ है कि उसे अब व्यापार का रूप दे दिया गया है। संसार में लाखों आदमियों का निर्वाह केवल सिनेमा द्वारा हो रहा है। भारतवर्ष में भी सिनेमा की कम्पनियाँ धड़ाधड़ खुल रही हैं, और यहाँ भी व्यापार जोर पकड़ता जाता है। पहले-पहल सिनेमा की कम्पनियाँ न्यूयार्क में खुलीं, सबसे अधिक नाम होलीवुड का है। होलीवुड की कम्पनियों ने ही चार्ली चेपलिन, डगलस फेयर-बेंक्स, जैकी कूगन आदि विश्वविख्यात अभिनेताओं को जन्म दिया है। हिन्दुस्तान की भी कितनी ही कम्पनियों ने थोड़े ही समय में काफ़ी उन्नति करली है। यहाँ भी कुछेक अभिनेता और अभिनेत्रियाँ इस कला में खूब नाम कमा चुके हैं।

सिनेमा को तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं--कहानी, चित्रशाला ( स्टुडियो ) और प्रदर्शन-भवन। सिनेमा में जो चीजें दिखाई जाती हैं, उन्हें मनोरंजक और शिक्षाप्रद बनाने पर बड़ा ध्यान दिया जाता है। सब बातों को प्रायः कहानी का रूप देने का नियम है। ये कहानियाँ सुयोग्य कहानी लेखकों द्वारा बड़ी सावधानी से तैयार कराई जाती हैं, फिर चतुर अभिनेताओं द्वारा उनका अभिनय होता है, और विशेष

फ़ोटो-केमरों द्वारा उस अभिनय के चित्र लिये जाते हैं। साधरण केमरों की अपेक्षा सिनेमा-केमरों में यह विशेषता होती है कि उसके द्वारा चलते-फिरते चित्र भी लिए जा सकते है। यहाँ तक कि जिसका चित्र लिया जाता है, उसके श्वास की गति तक का प्रदर्शन इन केमरों द्वारा हो जाता है। हँसते या रोते समय चेहरे के स्नायुओं के सिकुड़ने और फैलने तक की सूक्ष्म गति का प्रदर्शन इन चित्रों द्वारा होता रहता है। सिनेमा-कम्पनियाँ चित्र तैयार करने में लाखों रुपये व्यय करती है। फिर यही चित्र 'फ़िल्म' के रूप में नियत किराया लेकर सिनेमा घरो मे, प्रदर्शन के लिए भेजे जाते है। फ़िल्मो की रील चरखी पर चढ़ा दी जाती है, और मशीन के घुमाने से चित्र पर चित्रों का ताँता-सा लग जाता है।

भारतीय सिनेमा-घरों में धार्मिक, ऐतिहासिक और औपन्यासिक चित्रों के दिखाने का विशेष उद्योग किया जाता है जो तमाशा अधिक लोकप्रिय हो जाता है, उसकी धूम मच जाती है। कितने ही खेल तो केवल स्त्रियों के लिए ही दिखाए जाते हैं, इनमें उन्हें पातिव्रत धर्म की यथेष्ट शिक्षा दी जाती है, और गृहस्थ सम्बन्धी अनेक आवश्यक बातें भी बताई जाती हैं। एक बड़ी अच्छी बात है, सर्व साधारण को दिखाने के पहले खेल सरकारी सेन्सर द्वारा पास कराये जाते हैं। अगर इन खेलों में अश्लीलता अथवा कोई अन्य अवांछनीय बात होती है, तो सेन्सर उनके दिखाने की आज्ञा नहीं देता।

सिनेमा देखने से विद्यार्थियों को भी बहुत-सी बातें मालूम

होती हैं। योरुप और अमरीका की जिन बातों को वे पुस्तकों के पृष्ठों पर पढ़ा करते हैं, उनका वास्तविक रंग-रूप सिनेमा चित्रपट पर देख कर बड़ा आश्चर्य होता है। इससे जहाँ ज्ञान बढ़ता है, वहाँ कौतूहल की पूर्ति के लिए भी यथेष्ट अवसर मिलता है। अतः शृंगार सम्बन्धी खेलों को छोड़कर, शेष खेल विद्यार्थियों के लिए बहुत उपयोगी हो सकते हैं। कुछ चित्र-पटों द्वारा स्वास्थ्य-सम्बन्धी चित्रों का भी प्रदर्शन किया जाता है। चित्र-पट पर कीटाणुओं या गन्दगी से फैलने वाले रोगों में ग्रस्त रोगियों के चित्र देखकर बड़ा आश्चर्य होता है। विलायत में तो सिनेमा से राजनीति सम्बन्धी बड़े-बड़े काम लिये जाते हैं। सचमुच सिनेमा बीसवीं शताब्दी का जागता जादू है—ऐसा जादू जो छोटे-बड़े वृद्ध युवा सबको अपने अनोखेपन से मुग्ध कर देता है।

मूक सिनेमा के चित्रों में जान तो पड़ जाती थी, और वे बोलने के लिए ओठ भी फड़काते थे, परन्तु बोल न सकते थे; धीरे-धीरे विज्ञान की कृपा से यह कमी भी दूर हो गई, और अब बोलने वाले सिनेमा भी तैयार हो गये हैं। इस प्रकार के सिनेमाओं को 'टाकी' कहते हैं। तुम किसी 'टाकी' में जाकर देखो, तसवीरें बातें करती, गाना गाती, हँसती, रोती और खेल खिलाती दिखाई देंगी। अर्थात् तसवीरों के बोल उठने से सिनेमा में अब पहले की अपेक्षा बहुत आकर्षण आ गया है। इन बोलने वाली फ़िल्मों के साथ फोनोग्राफ़ का सम्बन्ध कर दिया गया है। जब फ़िल्म चलती हैं तो उनमें आवाज़

भी निकलने लगती है। प्रारम्भ में मूक चित्रों की फिल्म बनाने के साथ-साथ, तत्सम्बन्धी वार्त्तालाप, गाना-बजाना तथा अन्य ध्वनियों के ग्रामोफोन रेकार्ड भी तैयार किये गये थे जो चित्रों की गति के साथ-साथ हाथ से चलाये जाते थे। ऐसा करने से चित्र-चालन के साथ रिकार्डों की सुसम्बद्धता न होती थी, और उनमें बार-बार बेढंगापन-सा दिखाई देने लगता था। कुछ दिनों बाद, ग्रामोफ़ोन रिकार्ड हाथ के बदले मशीनों से चलाये गये, परन्तु फिर भी वे चित्रों की गति का साथ देकर गाने-बजाने तथा कथोपकथन में सुसम्बद्धता न ला सके; क्योंकि एक रिकार्ड छह-सात मिनट से अधिक न चल सकता था, और एक फिल्म कम-से-कम १५ मिनट चलती थी। ऐसी दशा में एक रिकार्ड समाप्त हो जाने पर, फिल्म का साथ देने के लिए दूसरे नये रिकार्ड की आवश्यकता होती थी। रिकार्ड के इस अदलने-बदलने से सारा मजा मिट्टी में मिल जाता था। इसके बाद चित्रो की गति और उनकी आवाज़ों में समता लाने के लिए दो प्रोजैक्टिंग मशीनों का उपयोग हुआ। परन्तु ऐसा करने से जितनी असुविधा बढ़ गई, उतनी सफलता प्राप्त नहीं हुई।

परन्तु धुन के पक्के वैज्ञानिक लोग, पूरी सफलता प्राप्त किये बिना, चुप बैठने वाले कब थे। अन्त में उन्होंने वह तरकीब भी सोच निकाली जिसके द्वारा सिनेमा-चित्र की गति और उनके गाने-बजाने तथा कथोपकथन में समसामयिकता स्थापित हो गई। अर्थात् विज्ञान-वेत्ताओ ने, वैज्ञानिक सिद्धान्तों

के आधार पर, ध्वनि विद्युत-धारा में परिवर्तित कर दी, और 'लाउड स्पीकर' की सहायता से उसके धीमेपन को इतना ऊँचा और जोरदार बना दिया कि सिनेमा-भवन में बैठे हुए, सैकड़ों दर्शक बड़ी आसानी से सब बातें सुन सकें। बिजली के द्वारा ध्वनि में उतार चढ़ाव भी पैदा किया गया, जिससे आवाज़ में एक विशेष प्रकार का स्वाभाविक आकर्षण आगया।

यह कहना कठिन है कि सिनेमा में अब उन्नति की गुञ्जा-यश नहीं रही। गत पन्द्रह-बीस वर्षों के अल्पकाल में 'चल चित्र' सम्बन्धी जितनी अधिक उन्नति हुई है, उसे देखकर तो यही कहना पड़ता कि आगे चलकर, न जाने इस खेल में अभी क्या-क्या और होगा?

महेश अपने पिताजी की उपर्युक्त बातें बड़े ध्यान-पूर्वक सुनता रहा और जहाँ उसने कुछ पूछना चाहा वहाँ पूछा भी। बात समाप्त होने पर पं० श्रीदत्तजी ने कहा—बेटे, तुमको मैंने सिनेमा सम्बन्धी कुछ मोटी-मोटी बातें बताई हैं। फ़िल्म तयार करने की विधि इस तरह समझ में नहीं आ सकती, उसे समझाने के लिए तो तुम्हें किसी ऐसे स्टुडियो (चित्र-शाला) में जाना पड़ेगा, जहाँ फिल्म बनाये जाते हैं। बड़े होने पर अगर तुम्हारी इस ओर रुचि हुई और उत्सुकता बढ़ी तो अवश्य ही तुम सिनेमा-संसार सम्बन्धी अनेक आश्चर्यजनक बातें जान सकोगे।

## 'एक्स किरण'

'एक्स किरण' के आविष्कार से विद्वान-जगत् में एक हलचल-सी मच गई है। किसी वस्तु के बाहरी भाग को तो सब लोग देख सकते हैं, परन्तु उसके अन्दर क्या है, यह
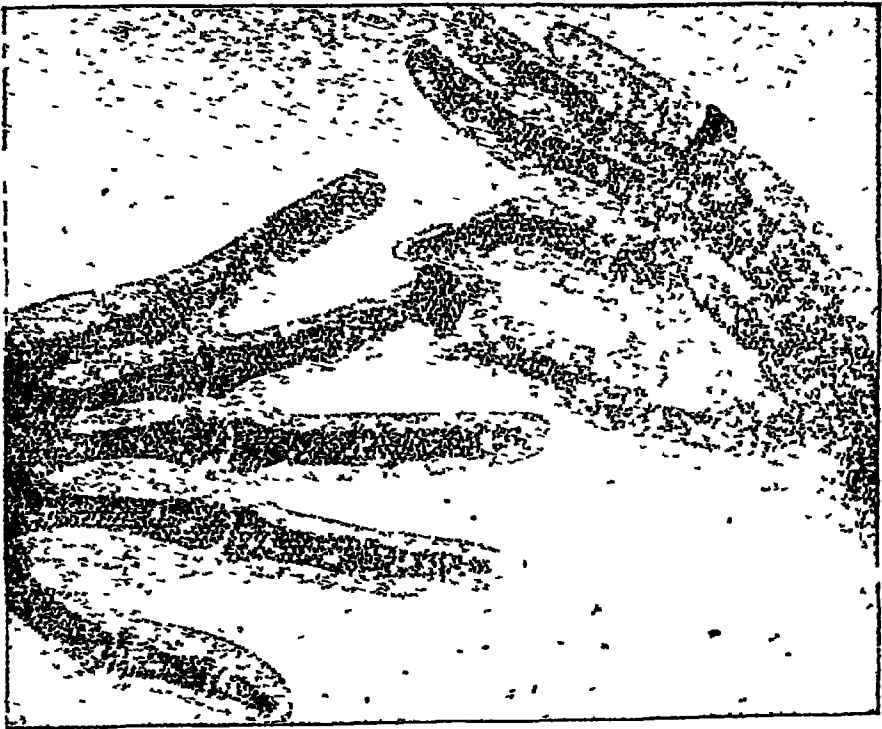
उँगली में अँगूठी पहिनाते हुए हाथ का एक्सकिरण द्वारा फ़ोटो

जानना बड़ा कठिन है। परन्तु एक्स किरण द्वारा हम लकड़ी, चमड़ा, माँस, लोहा, हड्डी इत्यादि पदार्थों के अन्तःस्थल के दर्शन कर सकते है। डॉक्टर लोग इस यन्त्र द्वारा शरीर की आन्तरिक अवस्था देखकर बड़े-बड़े भयङ्कर रोगों की चिकित्सा

करने में समर्थ हुए हैं। चर्म-रोगों की चिकित्सा करने में भी इससे बहुत सहायता मिलती है। एक्स किरण ने जड़ पदार्थों की अन्दरूनी बनावट का हाल बता कर विज्ञान-वेत्ताओं की अन्वेषण के लिए बहुत-सी सामग्री एकत्र कर दी है। इस यन्त्र का आविष्कार हुए अभी पूरे ५० वर्ष भी नहीं हुए। जर्मन वैज्ञानिक रौंटङ्गेन महाशय ने १८५० ई० में इस परमोपयोगी यन्त्र को निकाला था। इस आविष्कार की कहानी बड़ी विचित्र है। प्रो० रौंटङ्गेन एक दिन अँधेरे कमरे में बैठे किरणों पर कुछ प्रयोग कर रहे थे। पास ही काले कपड़े से ढका हुआ फ़ोटोग्राफ़ी का एक प्लेट भी रखा हुआ था। जब प्लेट खोला गया, तो उस पर जैसा चित्र चाहिए था, वैसा न आया, बल्कि प्लेट काला पड़ गया। रौंटङ्गेन को इसका कारण प्रतीत न हुआ, वह समझे कि सम्भवतः प्लेट ख़राब है, या वह उद्घाटन करने से पूर्व यथोचित रीति से ढका नहीं गया। परन्तु इनमें से एक भी बात न थी। रौंटगेन को सन्तोष न हुआ। वे अपनी किरण-नली के पास जाकर गम्भीरतापूर्वक विचार करने लगे, तो उन्हें मालूम हुआ कि नली से ही कोई ऐसी किरण निकलती हैं, जो काँच और काले कपड़े को पार कर, फ़ोटोग्राफ़ी के प्लेट को काला कर देती हैं। उस समय उन्हें अकस्मात् अपनी उँगलियों की हड्डियों की छाया परदे पर देख कर और भी अधिक आश्चर्य हुआ। अन्त में उन्हें निश्चय हो गया कि नली ही से कोई ऐसी किरण निकलती है, जो माँस, रक्त, लकड़ी इत्यादि को पार कर सकती है; परन्तु आविष्कारक

महाशय यह न समझ सके, कि वह किरण क्या है, इसीलिए उन्होंने उसका नाम 'एक्सकिरण' रक्खा—अर्थात् ऐसी किरण जिसके सम्बन्ध में कुछ जाना नहीं जा सकता।

एक्सकिरण के यन्त्र प्रायः बड़े-बड़े अस्पतालों में रहते हैं। टूटी हड्डियों का पता लगाने के लिए तो यह 'किरण' बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुई है। टूते हुए अङ्ग को उक्त किरण के सामने रख देने से तुरन्त पता लग जायगा, कि चोट कैसी और कहाँ लगी है। एक्सकिरण द्वारा शरीर में लगे हुए छर्रे तथा गोलियों का पता बड़ी आसानी से लगाया जा सकता है। इस 'किरण' के आविष्कार से पूर्व शरीर में घुसे हुए गोली या छर्रे खोजने के लिए बहुत-सी चीर-फाड़ करनी पड़ती थी। जो लोग पैसे या गोलियाँ निगल जाते हैं, एक्सकिरण द्वारा उनका पता लगाकर डाक्टर लोग उन्हें तुरन्त निकाल लेते हैं। जिस आदमी के कहीं चोट लगती है, वह 'एक्सकिरण' परीक्षा के लिए यन्त्र के समीप एक मेज़ पर लिटा दिया जाता है। थोड़ी ही देर में मशीन से खरखराहट की एक आवाज़-सी होती है। एक पुरज़ा-सा नीचे झुकता हुआ दिखाई देता है, बस इतनी ही देर में टूटे हुए अङ्ग का फ़ोटो उतर आता है, और फिर उसे कोई भी जानकार देख सकता है। डाक्टर लोगों को तो फ़ोटो देखकर तुरन्त ही पता लग जाता है, कि किस स्थान पर कौन-सी हड्डी टूटी है। फिर तारीफ़ यह है, कि टूटे हुए भाग का फ़ोटो लेते समय उसे नंगा करने की आवश्यकता नहीं होती। कपड़े पहने-पहने ही चित्र ले लिया जाता है।

अर्थात् एक्सकिरण कपड़े-लत्ते माँस-मज्जा सब को पार करती हुई, सीधी हड्डी तक पहुँचती है, और उसकी असली हालत बता देती है। अगर शरीर में कहीं सुई या पिन घुस गई हो तो, एक्सकिरण द्वारा उसका पता बड़ी आसानी से चल जाता है।

एक्सकिरण यन्त्र पर काम करने के लिए बड़ी सावधानी की आवश्यकता है। कहते हैं, यह किरण अधिक देर तक पड़ने से चमड़े को जला डालती है, और फिर उसका घाव कभी अच्छा नहीं होता। एक्सकिरण पर काम करने वाले अपने शरीर की—विशेष कर आँखों की—बड़ी रक्षा करते हैं। यह यन्त्र शीशे की मोटी चद्दरों से घेर दिया जाता है क्योंकि किरण इन चद्दरों को पार नहीं कर सकती। प्रयोग के समय किरण एक छिद्र द्वारा बाहर लाई जाती है। नमक, फिटकरी, हीरा आदि के परमाणु जानने में एक्सकिरण द्वारा बड़ी सहायता मिलती है। वह अङ्गों की बनावट निश्चय करने में जीव-शास्त्र-वेत्ताओं को बड़ी मदद देती है। धातु-शोधन के लिए तो एक्सकिरण बहुत ही उपयोगी है, इस क्षेत्र में भी उसके द्वारा अनेक आवश्यक बातें संसार के सामने आई हैं। मकान बनाने के लिए बड़े-बड़े शहतीर डाले जाते हैं। इन शहतीरों में यदि कोई गड़बड़ी होती है, या उनमें किसी अन्य धातु का सम्मिश्रण होता है, तो एक्सकिरण द्वारा उसका तुरन्त पता लग जाता है। रसायनिक विश्लेषण में भी एक्स-किरण के आधार पर अनेक प्रयोग किये जा रहे हैं। एक्स-

महाशय यह न समझ सके, कि वह किरण क्या है, इसीलिए उन्होंने उसका नाम 'एक्सकिरण' रक्खा—अर्थात् ऐसी किरण जिसके सम्बन्ध में कुछ जाना नहीं जा सकता।

एक्सकिरण के यन्त्र प्रायः बड़े-बड़े अस्पतालों में रहते हैं। टूटी हड्डियों का पता लगाने के लिए तो यह 'किरण' बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुई है। टूते हुए अङ्ग को उक्त किरण के सामने रख देने से तुरन्त पता लग जायगा, कि चोट कैसी और कहाँ लगी है। एक्सकिरण द्वारा शरीर में लगे हुए छर्रे तथा गोलियों का पता बड़ी आसानी से लगाया जा सकता है। इस 'किरण' के आविष्कार से पूर्व शरीर में घुसे हुए गोली या छर्रे खोजने के लिए बहुत-सी चीर-फाड़ करनी पड़ती थी। जो लोग पैसे या गोलियाँ निगल जाते हैं, एक्सकिरण द्वारा उनका पता लगाकर डाक्टर लोग उन्हें तुरन्त निकाल लेते हैं। जिस आदमी के कहीं चोट लगती है, वह 'एक्सकिरण' परीक्षा के लिए यन्त्र के समीप एक मेज़ पर लिटा दिया जाता है। थोड़ी ही देर में मशीन से खरखराहट की एक आवाज़-सी होती है। एक पुरज़ा-सा नीचे झुकता हुआ दिखाई देता है, बस इतनी ही देर में टूटे हुए अङ्ग का फ़ोटो उतर आता है, और फिर उसे कोई भी जानकार देख सकता है। डाक्टर लोगों को तो फ़ोटो देखकर तुरन्त ही पता लग जाता है, कि किस स्थान पर कौन-सी हड्डी टूटी है। फिर तारीफ़ यह है, कि टूटे हुए भाग का फ़ोटो लेते समय उसे नंगा करने की आवश्यकता नहीं होती। कपड़े पहने-पहने ही चित्र ले लिया जाता है।

अर्थात् एक्सकिरण कपड़े-लत्ते माँस-मज्जा सब को पार करती हुई, सीधी हड्डी तक पहुँचती है, और उसकी असली हालत बता देती है। अगर शरीर में कहीं सुई या पिन घुस गई हो तो, एक्सकिरण द्वारा उसका पता बड़ी आसानी से चल जाता है।

एक्सकिरण यन्त्र पर काम करने के लिए बड़ी सावधानी की आवश्यकता है। कहते हैं, यह किरण अधिक देर तक पड़ने से चमड़े को जला डालती है, और फिर उसका घाव कभी अच्छा नहीं होता। एक्सकिरण पर काम करने वाले अपने शरीर की—विशेष कर आँखों की—बड़ी रक्षा करते हैं। यह यन्त्र शीशे की मोटी चद्दरों से घेर दिया जाता है क्योंकि किरण इन चद्दरों को पार नहीं कर सकती। प्रयोग के समय किरण एक छिद्र द्वारा बाहर लाई जाती है। नमक, फिटकरी, हीरा आदि के परमाणु जानने में एक्सकिरण द्वारा बड़ी सहायता मिलती है। वह अङ्गों की बनावट निश्चय करने में जीव-शास्त्र-वेत्ताओं को बड़ी मदद देती है। धातु-शोधन के लिए तो एक्सकिरण बहुत ही उपयोगी है, इस क्षेत्र में भी उसके द्वारा अनेक आवश्यक बातें संसार के सामने आई हैं। मकान बनाने के लिए बड़े-बड़े शहतीर डाले जाते हैं। इन शहतीरों में यदि कोई गड़बड़ी होती है, या उनमें किसी अन्य धातु का सम्मिश्रण होता है, तो एक्सकिरण द्वारा उसका तुरन्त पता लग जाता है। रसायनिक विश्लेषण में भी एक्स-किरण के आधार पर अनेक प्रयोग किये जा रहे हैं। एक्स-

किरण को अधिक से अधिक उपयोगी बनाने के लिए, वैज्ञानिक लोग भरपूर चेष्टा कर रहे हैं, और वह दिन दूर नहीं; जब यह यन्त्र इतना लोकप्रिय हो जायगा कि जीवन-सम्बन्धी कितने ही कार्यों के लिए इसकी आवश्यकता अनिवार्य होगी।

---

## फ़ोनोग्राफ़

आजकल शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति हो, जिसने फ़ोनोग्राफ न देखा हो। अब से कुछ वर्ष पूर्व केवल धनवान् लोग ही फ़ोनोग्राफ़ खरीद कर उसके द्वारा अपना मनोरञ्जन कर सकते थे। उन दिनों लोग मेले-तमाशों में फ़ोनोग्राफ द्वारा सैकड़ों रुपये पैदा करते थे। उन फ़ोनोग्राफ़ों की बनावट आजकल के फ़ोनोग्राफ़ से सर्वथा भिन्न होती थी। उनमें बहुत-सी रबर की नलियाँ लगी रहती थीं, जिन्हें कान में लगाकर लोग गाना सुनते थे। परन्तु अब तो इनका इतना प्रचार बढ़ा कि गाँव-गाँव और घर-घर में फ़ोनोग्राफ़ के गाने सुन पड़ते हैं। विज्ञान की कृपा से आप देश-विदेश के बढ़िया से बढ़िया गाने वालों के गाने घर बैठे फ़ोनोग्राफ द्वारा सुन सकते हैं। अब तो फ़ोनोग्राफ के रिकार्डों मे रामायण, गीता व सत्यनारायण आदि की कथाएँ तक भरी जाने लगी हैं। इतना ही नहीं, विलायत मे तो किसी-किसी मुक़द्दमे में वादी-प्रतिवादी के बयान और गवाहों की गवाहियाँ तक को रिकार्डों मे स्थान दिया जाता है, जिससे पीछे कोई अपने कथन को

अस्वीकार न कर सके। यदि फ़ोनोग्राफ़ की इसी प्रकार उन्नति होती गई, तो बहुत सम्भव है, भविष्य में विद्यालयों में पढ़ाने और सभाओं में व्याख्यान देने आदि का काम भी फ़ोनोग्राफ़ों द्वारा ही लिया जाने लगे। विज्ञान जो न करे, थोड़ा है।
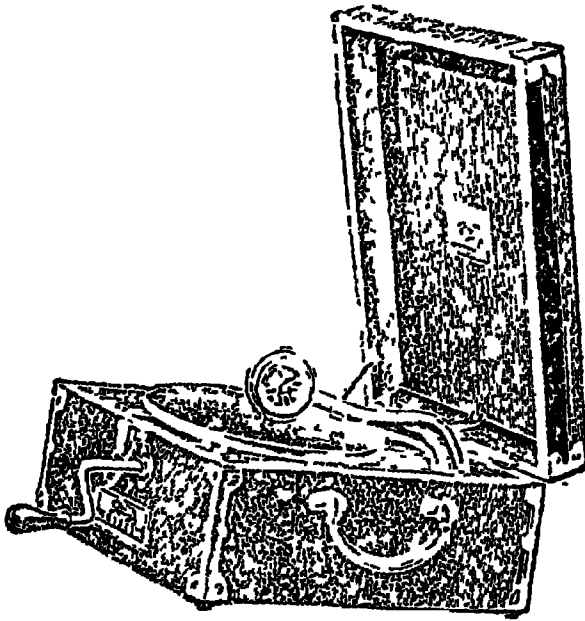
फ़ोनोग्राफ़

फ़ोनोग्राफ़ का जो परिष्कृत स्वरूप आजकल देख पड़ता है, इसके आविष्कार का श्रेय अमरीका निवासी विज्ञानाचार्य एडीसन महोदय ही को प्राप्त है। प्राचीन इतिहास-वेत्ताओं का तो कथन है कि अब से लगभग तीन हज़ार वर्ष पूर्व चीन निवासियों ने फ़ोनोग्राफ़ का आविष्कार किया था। ऐतिहासिकों के इस कथन पर सहसा अविश्वास भी नहीं कर सकते। क्योंकि चीन निवासी अब से एक सहस्र वर्ष पूर्व मुद्रण-कला

का आविष्कार भी कर चुके थे। इसके अतिरिक्त चीन की जगत् प्रसिद्ध दीवार आदि और भी बहुत-सी चीजें देखने में आती हैं; जिनके कारण हमें चीनियों की बुद्धिमत्ता का परिचय प्राप्त होता है।

चीन में ग्रामोफ़ोन के आविष्कार की कथा इस प्रकार प्रसिद्ध है, कि एक बार किसी चीनी सूबेदार को एक गुप्त सन्देश अपने राजा के पास भेजना था। उस समाचार को किसी दूत द्वारा मौखिक या लिखकर भेजने में उसके प्रकाशित हो जाने का भय था, अतः बहुत-कुछ सोच-विचार के पश्चात् उस सूबेदार ने ग्रामोफ़ोन की युक्ति सोच निकाली, और अपना सन्देश एक सन्दूक़ में बन्द करके भेज दिया। राजा ने जब उस सन्दूक़ को खोला तब इसमें सूबेदार की वाणी में वह सन्देश सुन पड़ा। इससे सिद्ध है कि चीन निवासी फ़ोनोग्राफ़ के सिद्धान्त को खूब समझते और युद्धादि के समय गुप्त सन्देश भेजने के लिए उसका उपयोग करते थे। चीन की प्राचीन पुस्तकों से यह भी विदित हुआ है, कि चीनी लोग भिन्न-भिन्न प्रकार से अनेक वस्तुओं में शब्दों को क़ैद किया करते थे। अभिप्राय यह कि उनके फ़ोनोग्राफ़ कहीं सन्दूक़ के रूप में होते थे, कहीं ताँबे की छड़ी के रूप में और कहीं किसी और ही शकल मे। कहा जाता है, प्राचीन काल में मिस्र वाले भी इस युक्ति को जानते थे।

यूरोप वाले भी लगभग ६०० वर्ष से फ़ोनोग्राफ़ के ढंग की मशीन बनाने की धुनि में लगे हुए थे। वहाँ के कई विद्वानों ने

बोलने वाली बहुत-सी मशीनें बनाईं भी, परन्तु वे उन्हें उन्नत रूप में सर्वसाधारण के सामने न रख सके। यों तो, सन् १२६४ ई० में राजर बेकन नामक व्यक्ति ने एक लोहे की बोलती हुई मूर्ति बनाई थी। इसके बाद सन् १५०० में इटली निवासी पार्टा नामक एक शिल्पी ने ध्वनि को एक नल में बन्द कर लिया था। इसी प्रकार सन् १६६२ ई० में एक जर्मन डाक्टर ने बोतल में शब्दों को क़ैद किया था। सन् १७६१ ई० में लिओनार्ड ह्वीलर नामक विद्वान् ने ग्रामोफोन के कई एक सिद्धान्त समाचार-पत्रों में प्रकाशित कराये, जिनके आधार पर कई वैज्ञानिकों ने कई प्रकार की बोलने की कलें बनाईं। परन्तु इन सबसे उत्तम जो फ़ोनोग्राफ़ बना वह सन् १८५९ ई० में केनिङ्ग नामक एक जर्मन विद्वान् ने बनाया। उक्त सब मशीनें बनीं, परन्तु वे दोषपूर्ण होने के कारण प्रचार नहीं पा सकीं। एडीसन ने फ़ोनोग्राफ़ का जो स्वरूप संसार के सामने रक्खा, वह सर्वथा निर्दोष और परिष्कृत होने के कारण दिन-दिन प्रचार पाकर सर्वप्रिय होता गया। यही कारण है, कि फ़ोनोग्राफ़ के आविष्कार का श्रेय एडीसन को दिया जाता है, यद्यपि उनसे पहले कई व्यक्ति बोलती हुई मशीन बना चुके थे।

एडीसन ने फ़ोनोग्राफ़ का आविष्कार करने के लिए समाधि नहीं लगाई, और न विज्ञान के बड़े-बड़े पोथे ही रटे, प्रत्युत एक आकस्मिक घटना से ही उन्हें इसकी विधि सूझ गई। कहा जाता है, कि १८७६ ई० में एडीसन महोदय टेलीफ़ोन के यन्त्र में कोई आवश्यक सुधार करने के लिए, उसके

किसी बारीक पुर्जे को सुई द्वारा दबा रहे थे, अकस्मात् उन्हें सुई की नोक के संघर्ष से कुछ आवाज़ सुन पड़ी। बस इसीसे उन्होंने सिद्धान्त निश्चित किया, कि सुई द्वारा ध्वनि का चित्र बनाया जा सकता है और इच्छानुसार उस चित्र को सुई की सहायता से पुनः ध्वनि के रूप में परिवर्तित किया जा सकता है। एडीसन ने इसी सिद्धान्त पर फ़ोनोग्राफ़ के रिकार्ड तैयार किये। फ़ोनोग्राफ़ में मुख्य वस्तु काले रंग का गोल तवा होता है, जिसे रिकार्ड कहते हैं। और तो उसमें तवे को घुमाने के लिए स्प्रिंग की शक्ति से चलने वाली साधारण-सी मशीन होती है।

फ़ोनोग्राफ़ का इतना वर्णन पढ़कर आपको आश्चर्य होता होगा, कि रिकार्ड के अन्दर मनुष्य की बोली किस प्रकार क़ैद करदी जाती है। यहाँ फ़ोनोग्राफ़ के रिकार्ड तैयार करने की कुछ विधि लिखी जाती है। आशा है, इससे रिकार्डों का बहुत कुछ रहस्य समझ में आ जायगा।

यह मानी हुई बात है, कि बिजली की शक्ति वस्तुतः ईथर (आकाश) में रहती है। जिस तार मे होकर बिजली की धारा बहती रहती है, उसके आसपास के आकाश मे भी विद्युत धारा प्रवाहित होने लगती है। रिकार्ड तैयार करने के लिए गाने वाले को एक ऐसे कमरे मे बैठाया जाता है, जिसके ईथर में विद्युत प्रवाह होता है। वैज्ञानिक भाषा मे इस कमरे का नाम 'स्टुडियो' है। जब गायक उस कमरे मे बैठकर गाता है, तो उसकी आवाज़ का प्रभाव उक्त विद्युत-प्रवाह पर पड़ता है और शब्द के उतार-चढ़ाव के साथ विद्युत का प्रवाह भी

घटता-बढ़ता है। इस बिजली की धारा को एक ध्वनि-विस्तारक यन्त्र में ले जाते हैं, जिसमें बिजली के तार लगे होते हैं। वहाँ से वह विद्युत्प्रवाह तारों द्वारा एक चुम्बक तक पहुँचता है। उस चुम्बक का सम्बन्ध एक सुई से रहता है। यह बात पहले बताई जा चुकी है, कि गायक की स्वर-लहरी के उतार-चढ़ाव के साथ बिजली का प्रवाह भी आप से आप घटता-बढ़ता रहता है। इस प्रवाह के घटने-बढ़ने के अनुसार ही उससे सम्बन्धित चुम्बक में कभी आकर्षण शक्ति अधिक हो जाती है, और कभी कम। इसके अनुसार ही वह अपने समीप लगी हुई सुई को कभी जोर से दबाता है और कभी धीरे से। जिस समय कमरे में गायक गाता होता है, उस समय सुई के नीचे एक घूमती हुई टेबुल पर मोम का रिकार्ड रख दिया जाता है। इस प्रकार अपने कम ज्यादा दबाव के अनुसार सुई उस मोम के प्लेट पर कभी गहरी और कभी उथली रेखाएँ बनाती जाती है। बस ये रेखाएँ ही गायक के शब्दों का साँचा होती हैं।

उपर्युक्त रीति से गाने का साँचा तैयार हो चुकने पर, उसमें रसायनिक विधि से पिघला हुआ ताँबा ढाल दिया जाता है। इस तरह रिकार्ड के दोनों ओर के दो धातुमय साँचे तैयार हो चुकने पर उन दोनों के बीच में पिघला हुआ रिकार्ड बनाने का मसाला डाल-डाल कर बहुत से रिकार्ड तैयार कर लिए जाते हैं। इतनी क्रिया के पश्चात् रिकार्डों के किनारे साफ़ करने और उन पर लेबिल लगाने का काम शेष रह जाता है। बस संक्षेप में रिकार्ड तैयार करने की यही विधि है।

प्रारम्भिक फ़ोनोग्राफ़ में रिकार्डों की जगह गिलास के आकार की चूड़ियों का उपयोग किया जाता था। परन्तु एक चूड़ी मे एक ही गाना भरा जा सकता था और उनके रखने के लिए स्थान भी अधिक अपेक्षित होता था। अब रिंकार्डों के आविष्कार से उक्त दोनों असुविधाएँ दूर हो गईं। इसी प्रकार पहली मशीनों मे जो भौंपू लगाया जाता था, उससे भी फ़ोनोग्राफ़ के लाने-लेजाने में बड़ी दिक़्कत होती थी। अब यह दिक्क़त भी दूर करदी गई है। अब तो बहुत से फ़ोनोग्राफ़ ऐसे बन गये है, जिनमें कमानी की शक्ति से चलने वाली मशीन की जगह बिजली का छोटा-सा मोटर लगा होता है। इससे इसमे बार-बार चाभी भरने का झंझट भी दूर हो गया। बस बिजली के तार का सम्बन्ध फ़ोनोग्राफ़ से कर दीजिये और घण्टों गाना सुनिये। अभी-अभी एक फ़ोनोग्राफ़ का भी आविष्कार हुआ है, जिसमें गाना सुनने के साथ-साथ गायक का चित्र या नर्तकी का नृत्य भी देख पड़ता है। विज्ञान की बलिहारी है।

एडीसन द्वारा किये गये आविष्कारों की संख्या एक-दो दस-पाँच नहीं सैकड़ों तक पहुँच गई है। उनमें से फ़ानोग्राफ का तो वर्णन ऊपर किया ही जा चुका है। इसके अतिरिक्त टेलीफ़ोन के आविष्कार या परिष्कार का श्रेय भी एडीसन ही को प्राप्त है। आजकल बिजली के चमचमाते हुए प्रकाश से बड़े-बड़े शहर ही नहीं, छोटे-छोटे गाँव तक आलोकित हो उठे हैं, उन विद्युत-बत्तियों की उपज भी एडीसन ही के विशाल मस्तिष्क से हुई है। सिनेमा के चल चित्रो को देखकर हम

अपना मनोविनोद करते हैं, उनके तैयार करने का फ़ोटो-कैमरा भी एडीसन ही की सूझ का परिणाम है। कहना चाहिये, एडीसन के आविष्कारों से हमारा रात-दिन का सम्बन्ध हो गया है। अतएव, हम यहाँ इस आविष्कारक की जीवन-सम्बन्धी कुछ बातें बता देना आवश्यक समझते हैं।

एडीसन का जन्म ११ फर्वरी सन् १८४७ ई० को अमेरिका के मीलान नामक नगर में हुआ था। इनका पूरा नाम टॉमस अलवा एडीसन था। एडीसन के पिता सेमुअल एडीसन मीलान में दूकान करते थे। इनकी माता का नाम था लैंसी इलियट। यह स्वयम् बड़ी विदुषी थी और अपने बालक एडीसन को सभ्य, सुशील, सदाचारी और सुशिक्षित बनाने के लिये पूर्ण प्रयत्न करती थी।

कहावत है, 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' इसके अनुसार एडीसन बचपन ही से अपनी कुशाग्र बुद्धि का परिचय देने लगे थे। वह जिस नई चीज़ को देखते, उसका परिचय जानने के लिए आकुल हो उठते, और माता-पिता से उस वस्तु के सम्बन्ध में अनेक प्रश्न पूछते। एडीसन अधिक पढ़े-लिखे नहीं थे। कारण यह कि बचपन में उनका स्वास्थ्य बहुत ही ख़राब था, इसलिए डाक्टरों ने उनको मस्तिष्क से अधिक काम लेने से मना कर दिया था। एडीसन स्कूल नहीं भेजे गये, उन्हें जो कुछ थोड़ी-बहुत शिक्षा मिली वह इनकी माता ही ने दी थी। घर पर भी एडीसन को जो कुछ पढ़ाया जाता, उसे वे तुरन्त याद कर लेते थे।

अन्य विषयों की अपेक्षा एडीसन की कला-कौशल में अधिक अभिरुचि थी। शिल्प-कला सम्बन्धी जिस बात को वह पढ़ते अथवा देखते उसका क्रियात्मक अनुभव किए बिना उन्हें सन्तोष न होता था। एडीसन की इस स्वभाविक प्रवृत्ति ही का फल था कि उन्होंने दस वर्ष की अवस्था ही में रसायन विद्या का अच्छा अनुभव प्राप्त कर लिया। इसी समय उन्होंने अपने घर पर एक छोटी-सी रसायनशाला भी खोली। एडीसन को बालकों के साथ खेलने की अपेक्षा अपनी रसायनशाला में एक शीशी का द्रव्य दूसरी मे उलटना अधिक पसन्द था। वे अपनी उस एकान्त कोठरी में बैठे-बैठे न मालूम क्या-क्या परीक्षण करते रहते थे।

पिता की आर्थिक अवस्था अधिक अच्छी न होने के कारण एडीसन को रसायनशाला के लिए घर से कुछ सहायता न मिलती थी। ऐसी दशा में उन्होंने शहर में समाचार-पत्र बेच कर प्रयोगशाला के लिए खर्च जुटाना शुरू किया। कुछ दिनों बाद यह रेल मे अखबार बेचने लगे, और फिर चलती ट्रेन ही मे उन्होंने स्वयं एक समाचार-पत्र निकालना शुरू किया। इस पत्र का समाचार-संग्रह, सम्पादन, मुद्रण और विक्रय आदि सब काम अकेले एडीसन चलती गाड़ी ही में करते थे। धीरे-धीरे इन्होंने रेल ही मे अपनी छोटी-सी प्रयोगशाला भी बनाली और उसमें प्रयोग करने लगे।

एक बार एडीसन अपनी इस चलती-फिरती प्रयोगशाला में कुछ परीक्षण कर रहे थे। अचानक किसी विस्फोटक द्रव्य

के रेल के तख्ते पर गिर पड़ने से उसमें आग लग गई। इस पर गार्ड ने इनको एक थप्पड़ मार कर ट्रेन से उतार दिया और इनकी शीशियाँ आदि सब बाहर फेंक दीं। इस दुर्घटना से एडीसन की प्रयोगशाला तो नष्ट हो ही गई, साथ ही गार्ड का थप्पड़ लगने से इनका एक कान भी सदा के लिए बेकार हो गया। फिर भी उद्योगशील एडीसन ने हिम्मत नहीं हारी। अब वह अपने घर पर अन्वेषण का कार्य और भी अधिक उत्साह और लगन के साथ करने लगे।

कई इञ्जन ड्राइवरों से एडीसन को मित्रता थी। उनके सहयोग से इंजन घरों में जा-जाकर एडीसन ने इंजन के सम्बन्ध में काफ़ी जानकारी कर ली। इसी तरह उन्होंने रेलवे के तारघरों में जा-जाकर तार का काम भी सीख लिया। कुछ दिनों बाद इनको तार के काम की नौकरी मिल गई। जब भी नौकरी के काम से अवकाश पाते, तभी विज्ञान-सम्बन्धी विचारों और प्रयोगों में लग जाते। यह दिन की अपेक्षा रात की ड्यूटी अधिक पसन्द करते थे, क्योंकि रात्रि के शान्त समय में उन्हें सोचने का अच्छा अवसर मिलता था। कई जगह से उन्होंने इसलिए नौकरी छोड़ दी थी, कि वहाँ उन्हें उनकी इच्छानुसार रात की ड्यूटी न मिली थी। एडीसन अपने वैज्ञानिक अन्वेषणों के आगे दूसरी किसी बात की परवा नहीं करते थे। लगन हो तो ऐसी हो। इस लगन का ही प्रभाव है कि आगे चलकर एडीसन टेलीफ़ोन, फ़ोनोग्राफ़, बायस्कोप आदि अनेक उपयोगी तथा महत्वपूर्ण वस्तुओं का आविष्कार

करने में सफल हुए।

एडीसन दिन-रात आविष्कारों की धुन में लगे रहने के सिवा कुछ भी करना न चाहते थे, परन्तु रोटियों का प्रश्न हल करने के लिए विवश उन्हें नौकरी करनी पड़ती थी। आविष्कारों में तो अभी खर्च ही खर्च था, उनसे आमदनी कुछ न थी। अब तक एडीसन ने छोटे-मोटे कई आविष्कार किये, पर उनसे आर्थिक लाभ अधिक नहीं हुआ।

आर्थिक चिन्ताओं से व्यथित होकर एडीसन घूमते-फिरते न्यूयार्क पहुँचे और वहाँ गोल्ड इन्डीकेटर कम्पनी में ठहरे। बस यहाँ से एडीसन के भाग्य ने पलटा खाया। एक दिन कम्पनी की मेशीनरी में कुछ ऐसी खराबी हो गई कि वह वहाँ के बड़े से बड़े मिस्त्रियों से भी ठीक न हो सकी अन्त मे एडीसन ने भी उन मशीनो को ध्यानपूर्वक देखा और ठीक कर दिया। उस पर कम्पनी के अधिकारियों ने एडीसन को ३०० डालर मासिक पर कम्पनी के सब मिस्त्रियों का हैड नियत कर दिया। यहाँ रह कर एडीसन ने कई आविष्कार किये जिनसे गोल्ड इन्डीकेटर कम्पनी के कार्यों मे अनेक सुविधाएँ हो गईं। इस पर कम्पनी के अधिकारियों ने एडीसन को ५०,०००) डालर पुरस्कार स्वरूप दिये।

इस प्रकार एडीसन ने आर्थिक चिन्ताओं से मुक्त होकर अपना पूरा समय आविष्कारों मे लगा दिया। इस कार्य मे उनकी प्रतिभा ऐसी विकसित हुई कि ४० वर्ष के भीतर ही भीतर उन्होंने छोटे-बड़े लगभग डेढ़ हजार नए-नए आविष्कार

कये, जिनमें बिजली, बिजली का प्रकाश, बिजली का इंजन, फ़ोनोग्राफ़, मोगोफ़ोन, फ़ोनो मोटर, सिनेमा, फ़ोटो यन्त्र आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

खेद है, विज्ञानाचार्य एडीसन महोदय का गत १९३१ ई० के अक्टूबर मास में देहान्त हो गया।

---

## रबर

रबर ऐसी चीज़ है जिसका उपयोग किसी न किसी रूप में रोज़ ही होता रहता है। रबर के जूते, खिलौने गेंद, गेटिस, कंघे, टायर, ट्यूब और न जाने क्या-क्या बनते हैं। यह एक ऐसी वस्तु है, जो ग़रीब-अमीर सब ही के काम आती है। रबर में मसाला मिला कर उसे ख़ूब कड़ा बना लेते हैं। फिर वह पत्थर की तरह मज़बूत हो जाती है। जिस रबर का इतना अधिक प्रचार है, उसे अब से सौ-सवासौ वर्ष पूर्व कोई जानता भी न था। एक किताब में रबर का उल्लेख पढ़कर, फ्रांस से कुछ विद्वान उसकी खोज में निकले और घूमते-फिरते दक्षिणी अमरीका पहुँचे। वहाँ उन्हें रबर के वृक्ष का पता लगा और यह मालूम हुआ कि उन वृक्षों से रबर कैसे तैयार की जाती है। इस खोज से पचास वर्ष बाद इँगलैंड के पील नामक व्यक्ति ने, रबर को 'वाटर प्रूफ़ बनाने के लिए इस्तैमाल किया। परन्तु यह 'वाटर प्रूफ़' विशेष लोक-प्रिय न

हुआ। इसके बाद अन्य लोगों ने, 'वाटर-प्रूफ' बनाने का प्रयत्न किया और उन्हें सफलता भी प्राप्त हुई।

'वाटर-प्रूफ' वह कपड़ा होता है, जिस पर पानी कुछ असर नहीं कर सकता। बरसात में प्रायः लोग 'वाटर प्रूफ' का ओवर-कोट पहन लेते हैं जिनसे वे मेंह से नहीं भीगने पाते। सारा पानी ओवर-कोट पर पड़ कर ढुलक जाता है, और भीतर के कपड़े सूखे बने रहते हैं।

टामसन हैनकौक और चर्लस गुड ईयर ने रबर की खोज में बहुत उन्नति की। ये महाशय क्रमशः इँगलैंड और अमरीका के रहने वाले थे। गुड ईयर चाहता था कि कोई ऐसी विधि हाथ लगे, जिससे रबर गरमी, सरदी और पानी तीनों का मुक़ाबिला कर सके। इस प्रयत्न से उसे बहुत आर्थिक हानि उठानी पड़ी। कभी-कभी तो उसके कुटुम्बियों को भूखों तक रहना पड़ा। एक बार गुड ईयर ने अपने बच्चों की किताबें बेच कर, उनके दाम तक इस परीक्षण में लगा दिये। गुड ईयर की भाँति उसकी स्त्री भी रबर की धुन में बराबर लगी रहती थी। वह सच्चे अर्थ में अपने पति की अनुगामिनी थी। घोर सङ्कट सहने पर भी, उसने उफ़ तक नहीं की और निरन्तर गुड ईयर को प्रोत्साहन देती रही। उसने रबर के कितने ही जोड़े जूते और कपड़े तैयार किये, परन्तु गरमी का मौसम आते ही वह सब पिघल गये और अधिक समय तक न ठहर सके। जो बात गुड ईयर चाहता था, वह उसे हासिल न हुई। परन्तु गुड ईयर अपने परीक्षण में निरन्तर संलग्न रह कर

सोचता रहा कि रबर की चिपचिपाहट दूर कर उसमें कड़ाई और कठोरता कैसे लाई जा सकती है। वह कोट, पतलून, टोप आदि सब कपड़े रबर के बने ही पहनता था, लोग उसे देख कर हँसते, वह किसी की कुछ परवा न करता और अपनी धुन में बराबर लगा रहता।

गुड ईयर के इस खब्त से, घर के लोग तंग थे, और मित्र मिलापी तो आग्रह-पूर्वक कहते रहते थे—भाई, इस पागलपन को छोड़कर जीवन-निर्वाह का कोई साधन सोचो, तुम स्वयं कष्ट सहते हो और घर वालों को दुखी रखते हो। गुड ईयर सब की सुन लेता, और करता वही जो उसके मन में समाया हुआ था। एक दिन बड़ा तमाशा हुआ, गुड ईयर रबर के गोंद मे गंधक मिलाकर कुछ प्रयोग कर रहा था, इतने ही में उस मसाले का कुछ भाग चूल्हे में गिर गया। गुड ईयर ने उसे उठाकर देखा तो मालूम हुआ कि उस पर आग का कुछ भी असर न हुआ, वह ज्यों का त्यों सुरक्षित है। फिर उसने इस टुकड़े को रात भर ठंड में लटकाए रक्खा, तो ठंड का भी उस पर कुछ प्रभाव न पड़ा। यह देखकर गुड ईयर के हर्ष का ठिकाना न रहा। वह खुशी से एकदम उछल पड़ा! फिर तो उसने परीक्षणों पर परीक्षण किए और रबर से बनी ६० नई-नई चीजें तैयार कर उन्हें संयुक्त राज्यों में पेटेंट कराया।

अब क्या था, रबर की उपयोगिता की धूम मच गई, लोगों ने नई-नई चीजें निकाल डालीं। सैकड़ों प्रकार से रबर का

उपयोग होने लगा, कितने ही कारख़ाने खुल गये और हज़ारों आदमियों को रोज़गार मिल गया। सब कुछ हुआ, परन्तु बेचारे गुड ईयर की ग़रीबी दूर न हो सकी, अन्त में वह ६० वर्ष की आयु में निर्धनता की हालत ही में संसार से विदा हुआ। रबर के प्रयोगों के सम्बन्ध में गुड ईयर ने जो निस्वार्थ प्रयत्न किया वह कभी नहीं भुलाया जा सकता, उसने जीवन का अधिकतर भाग इसी खोज में लगाया—लोगों के उपहास और उपेक्षा की उसने कभी परवा न की। उसके सामने एक लक्ष्य था, और उसी की पूर्ति में वह सदैव पागल-सा बना रहता था।

अब तक रबर से जितनी चीजें बनी हैं, उनमें टायर आयरलैण्ड निवासी डनलप नामक एक व्यक्ति ने निकाले। गाड़ियों और साईकिलों में इन टायरों की अच्छी खपत होती है, और यह धन्धा खूब ज़ोर पकड़ रहा है। ऐसा कौन-सा स्थान है जहाँ डनलप के टायरों का व्यापार नहीं होता।

रबर एक विशेष प्रकार के वृक्षों से प्राप्त होती है। इन वृक्षों से दूध-सा निकलता रहता है। इसी को लोग इकट्ठा कर लेते हैं। वृक्षों के तनों पर जहाँ-जहाँ ख़राश कर दिये जाते हैं, वहीं से दूध निकलने लगता है, और कुछ घण्टों में नीचे रक्खे हुए प्याले भर जाते है। फिर इसी दूध द्वारा रसायनिक प्रक्रिया से रबर तैयार की जाती है। कारख़ानों में आकर रबर का संस्कार होता है, और आवश्यकतानुसार वह कड़ी या मुलायम अथवा लचकदार बनाई जाती है।

अब तो रबर का इतना प्रचार बढ़ गया है कि उसके वृक्षों

का नियमानुसार पोषण और संरक्षण किया जाता है। संसार के प्राय: सभी राष्ट्र इस उपयोगी वस्तु से लाभ उठाने और उसके व्यापार के लिए उचित उद्योग करते हैं। विज्ञान की कैसी महिमा है, कि उसने साधारण पेड़ों के दूध को वह रंगत दे दी, कि जिससे लाखों-करोड़ों रुपयों का लाभ हुआ और अगणित लोग धन्धे से लग गये।
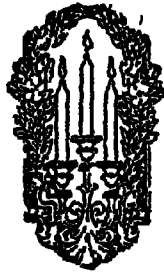
जगदीशप्रसाद अग्रवाल बी. कॉम द्वारा
दी एज्यूकेशनल प्रेस, आगरा में मुद्रित।

XX—7—40